तृतीय संस्करण मूल्य दो रुपया

भूमिका

जननी जन्मभूमि के प्रति प्रेम को उद्बुद्ध करनेवाले लोकप्रिय राष्ट्रीयगान 'वंदेमातरम्' के रचयिता तथा विदेशी पठानों से आक्रांत और अर्थलोलुप स्वेच्छाचारी अंग्रेजों की ताजी गुलामी से विकल, व उस समय के हिंदू-समाज में उत्पन्न धर्मान्धता के फलस्वरूप रूढ़िगत अनाचारों और कलुषित संस्कारों से पीड़ित, असहाय जनता में स्वावलंबन, स्वाभिमान, राष्ट्रीयता तथा भारतीय मौलिक संस्कारों में आस्था के उद्बोधक, महा-महिमा-मंडित बंकिम, आज की राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक सभी क्रांतियों के आदिस्रोत थे।

सन् ८४२ ई० में वंगनरेश आदिशूर द्वारा, यज्ञ के लिये कान्यकुब्ज देश से आमंत्रित और फिर बंगाल में ही बस गये श्री 'दत्त' चट्टोपाध्याय से १८वीं पीढ़ी में अवस्थी गंगानन्द, 'चटर्जी वंश' के 'फूलिया' नाम के एक अति कुलीन घराने के पूर्वपुरुष थे। इन्हीं से ८वीं पीढ़ी में, जिला 'चौबीस परगना' (बंगाल) के काटालपाड़ा ग्राम में भारत के सुवर्णकलश बंकिम ने सन् १८३८ ई० में जन्म लेकर ५६ वर्ष की आयु में सन् १८९४ ई० में गोलोक-यात्रा की।

अंग्रेजी हुकूमत के उच्चपदाधिकारी, रायबहादुर बंकिमचन्द्र चटर्जी, सी० आई० ई०, शासन के स्वेच्छाचार से सदैव लोहा लेने पर भी हुकूमत के अनन्य आदर के पात्र रहे। उस समय नेटिवों (काले भारतीय) की बिसात ही क्या थी! फिर भी अंग्रेज इन नरशार्दूल के विरोधाभास से ही विचलित हो उठते थे। सरकार और जनता दोनो के ही अनीतिकारी वर्ग के लिए वे नृसिंह स्वरूप थे। अंग्रेजी दबदबे से आतंकित और पाश्चात्य चकाचौंध में मुग्ध बंगाल के निर्जीवप्राय उस बाबू-युग में भी उनके साथ किसी अंग्रेज का मुकदमा पड़ जाने पर उन गौरांग प्रभु को कलकत्ता-बार में एक भी वकील न मिलने से नतोन्नत होना पड़ा था।

हेम०—यवन लोग बंगाल को जीतने का उद्योग कर रहे हैं। बहुत जल्दी बख्तियार खिलजी सेना लेकर गौड़ की ओर यात्रा करेगा।

माधवाचार्य का मुख प्रसन्नता से खिल उठा। उन्होंने कहा—जान पड़ता है, इतने दिनों में विधाता की इस देश पर दया हुई है।

हेमचन्द्र एकटक एकाग्र मन से माधवाचार्य की ओर ताकते हुए उनके कथन की प्रतीक्षा करने लगे। माधवाचार्य कहने लगे—कई महीनों से मैं केवल भविष्य की गणना में लगा हुआ हूँ। गणना से जो भविष्य जाना गया है, उसके फलने का यह उपक्रम हो रहा है।

हेम०—किस तरह?

माध०—मैंने गणना करके देखा है कि यवनराज्य का ध्वंस बंगाल से ही आरंभ होगा।

हेम०—यह हो सकता है। किन्तु कितने समय में होगा? किसके हाथों होगा?

माध०—यह भी मैंने गणना करके जान लिया है। जब पाश्चात्य देश के व्यापारी बंगराज्य में शस्त्र धारण करेंगे, तब यवन-राज्य का विध्वंस होगा।

हेम०—तब मेरे विजय-लाभ की संभावना कहाँ है? मैं तो व्यापारी नहीं हूँ।

माध०—तुम्हीं व्यापारी हो। जब तुमने मृणालिनी को पाने के प्रयास से मथुरा में बहुत समय तक निवास किया था तब कौन-सा बहाना करके वहाँ रहे थे?

हेम०—मैं तब मथुरा में व्यापारी ही परिचित था।

माध०—अतएव तुम्हीं वह पश्चिम देश के व्यापारी हो। गौड़ (बं[illegible] का प्राचीन नाम) देश में जाकर शस्त्र धारण करोगे, तभी यवनों का विध्[illegible] होगा। तुम मेरे आगे वादा करो कि कल सबेरे ही गौड़ देश की [illegible] करोगे, जब तक वहाँ यवन के साथ युद्ध न करो, तब तक मृणालिनी से [illegible] न करोगे।

हेमचन्द्र ने एक लम्बी साँस छोड़कर कहा—यही स्वीकार करता हूँ किन्तु मैं अकेला कैसे युद्ध करूँगा?

इससे भेंट करो। अब तुम मेरे आश्रम से अन्य स्थान को जाओ, मेरे आश्रम को कलुषित न करना। मैं अपात्र को किसी काम का भार नहीं देता।

इतना कहकर माधवाचार्य पहले की तरह जप करने लगे।

हेमचन्द्र आश्रम से बाहर निकल गये। घाट पार आकर उसी छोटी-सी नाव पर सवार हुए। नौका पर जो दूसरा आदमी था, उससे उन्होंने कहा—दिग्विजय! नाव खोल दो।

दिग्विजय ने कहा—कहाँ चलूँ?

हेमचन्द्र ने कहा—जहाँ जी चाहे—यमराज के घर।

दिग्विजय अपने प्रभु के स्वभाव को जानता था। अस्फुट स्वर में बोला—वह तो थोड़ी ही दूर है। इतना कहकर उसने नाव खोल दी और उसे धारा के विपरीत खेने लगा।

हेमचन्द्र बहुत देर तक चुप रहे। अन्त को बोले—दूर हो!—चलो, लौट चलो।

दिग्विजय ने नाव लौटा दी और फिर प्रयाग के घाट में जा पहुँचा। हेमचन्द्र एक छलाँग में किनारे पर फाँद गये और फिर माधवाचार्य के आश्रम में दाखिल हुए।

उन्हें देखकर माधवाचार्य ने कहा—फिर क्यों आये हो?

हेमचन्द्र ने कहा—आपने जो कहा है, वही मुझे मंजूर है। मृणालिनी कहाँ है, बताइए।

माध०—तुम सत्यवादी हो—मेरी आज्ञा का पालना तुमने स्वीकार किया, इसी से मैं सन्तुष्ट हुआ। गौड़ नगर में एक शिष्य के घर मृणालिनी को मैंने रख दिया है। तुमको भी उसी प्रदेश में जाना होगा, लेकिन तुम उससे साक्षात्कार न करने पाओगे। शिष्य के प्रति मेरी विशेष आज्ञा है कि जितने दिन मृणालिनी उनके घर रहेगी, वह किसी दूसरे पुरुष को न देख पावे।

हेम०—साक्षात्कार न कर पाऊँगा न सही। आपने जो कहा, इसी से मुझे सन्तोष हो गया। अब आज्ञा कीजिए, मुझे क्या करना होगा?

माध०—तुम दिल्ली जाकर यह जान आये हो क्या कि यवनों की सलाह क्या है? वे अब क्या करना चाहते हैं?

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रमेशचन्द्र दत्त, मधुसूदन दत्त, केशवसेन जैसे उनके समकालीन महापुरुषों में, मेधावी, विचक्षण और आत्माभिमानी बंकिम का बड़ा आदर था। विश्वविख्यात टैगोर ने अपनी किशोरावस्था में इस प्रतिभाशाली रोबीले व्यक्ति के दर्शन से मुग्ध होकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा जब-तब की है। उनका दार्शनिक ज्ञान और विश्लेषण-शक्ति उनके 'कृष्णचरित्र', 'धर्मतत्व' तथा 'श्रीमद्भगवद्गीता' पर टीका एवं विवेचन से प्रकट है। राष्ट्रीय संघर्ष, जमींदारी उन्मूलन, विदेशयात्रा, पर्दा, स्त्रीशिक्षा, बहुविवाह, स्त्रियों तथा निम्न जातिय वर्ग की हेय दशा जैसे, भ्रांति से उत्पन्न राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा धार्मिक अनेक वैषम्यों में साम्य उत्पन्न करने की अभिरुचि और यत्किञ्चित्-प्राप्त सफलता या उथल-पुथल देश में इधर जो हुई है, उसको सौ वर्ष पूर्व ही भारतीय दृष्टिकोण से अंकुरित करने के फल-स्वरूप ही वे मंत्रद्रष्टा अथवा ऋषि करके पूज्य हैं। 'अंग्रेजी ही नहीं, देशीय भाषाओं में भी श्रेष्ठतम सत्साहित्य का सृजन किया जा सकता है', इस नूतन आत्मविश्वास के देनहार, वे आदि गुरु और भारतीय साहित्यिकों, निर्भीक समालोचकों तथा सुधारकों के शिरोभूषण हैं।

इनके उपन्यास, निबंध, प्रहसन एवं व्यंग्य तथा इनके पत्र 'बंगदर्शन' में प्रकाशित धार्मिक विवेचनों से न केवल साहित्यसुलभ मनोरंजन ही प्राप्त है, वरन् घर और बाहर, हमारे सामने नित्य प्रस्तुत उलझनों व धर्म-संकटों में, चिरंतन के लिए पथ-प्रदर्शक यह एक अविनाशी साहित्य है। विस्तृत विवरण 'श्री प्रभाकर-साहित्यालोक, लखनऊ' से शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली बंकिम बाबू की पुष्कल जीवनी से प्राप्त होगा।

हमारे संस्थान से बंकिम-साहित्य का अधिकांश प्रामाणिक अनुवाद प्रकाशित हो चुका—शेष हो रहा है। सौभाग्यवश उसके अनुवाद और संपादन में देश प्रख्यात, बंगला के अनुवादकों में अद्वितीय, वयोवृद्ध साहित्यकार स्व० पं० रूपनारायण पाण्डेय का सहयोग प्राप्त होने का हमें गौरव रहा है।

उनके स्वर्गवास के उपरान्त हमारे लिये वह एक समस्या बन गई कि ऋषि बंकिम के अब शेष कृष्ण चरित्र आदि दार्शनिक ग्रंथों का सफल अनुवाद किस

प्रकार हो। सौभाग्यवश श्रीपाण्डेयजी के ही सहयोगी, लेखन-प्रकाशन-मुद्रण के समग्ररूपेण कलाकार तथा विद्वत्प्रवर श्रीचंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासुजी ने यह भार सहर्ष ग्रहण हमें चिन्तामुक्त कर दिया। बंकिम-साहित्य का हमारा प्रकाशन अब पुनः पूर्ववत् जारी है।

प्रस्तुत पुस्तक 'मृणालिनी' बंकिम बाबू की रचना में क्रम से तृतीय है। ऐतिहासिक आधार पर लिखा हुआ यह उपन्यास रोचक, शिक्षाप्रद और बंकिम बाबू की अद्भुत भावव्यञ्जना का साक्षात् उदाहरण है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से मनोरमा अपूर्व है। उपन्यास का सारा कथानक रोमाञ्चकारी और कुतूहलपूर्ण है।

नन्दकुमार अवस्थी

अध्यक्ष, श्री प्रभाकर-साहित्यालोक, लखनऊ

प्रथम खण्ड

प्रथम परिच्छेद

आचार्य

एक दिन प्रयागतीर्थ में, गंगा-यमुना के संगम में, अपूर्व वर्षा-ऋतु के दिन के अन्तभाग की शोभा प्रकट हो रही थी। वर्षाकाल था, पर बादल नहीं थे। अथवा जो बादल थे, वे सुनहली लहरों की माला के समान पश्चिम आकाश में विराजमान थे। सूर्यदेव अस्ताचल को जा रहे थे। वर्षा का पानी बढ़ने से गंगा और यमुना दोनो उमड़ रही थीं, यौवन की परिपूर्णता से पागल हो रही थीं, जैसे दो बहनें क्रीड़ा करती हुई एक दूसरी को आलिंगन कर रही थीं। चंचल वस्त्र के छोर की तरह उनकी लहरें हवा के थपेड़ों से किनारों पर टकरा रही थीं।

एक छोटी-सी नाव में केवल दो नाविक थे। नाव असंगत साहस से उस दुर्गम यमुना के प्रवाह के वेग पर चढ़कर प्रयाग के घाट आ लगी। एक आदमी नाव पर रहा, दूसरा किनारे पर उतर गया। जो उतरा, उसकी नई जवानी थी, उन्नत बलिष्ठ शरीर था, वेश योद्धा का था। सिर पर पगड़ी, हाथ में धनुष-बाण, पीठ पर तरकश, पैरों में जूते थे। यह वीर आकार का पुरुष बहुत सुन्दर था। घाट के ऊपर संसार से विरक्त होकर पुण्योपार्जन का प्रयत्न करनेवाले लोगों के कुछ आश्रम थे। उनमें से एक छोटी-सी झोपड़ी में उस जवान ने प्रवेश किया।

झोपड़ी के भीतर एक ब्राह्मण कुशासन पर बैठकर जप कर रहे थे। ब्राह्मण का डीलडौल बहुत लम्बा-चौड़ा था। शरीर सूखा हुआ था।

मुखमण्डल पर सफेद दाढ़ी-मूछ; ललाट और विरल केश, खोपड़ी पर थोड़ी-सी विभूति शोभित थी। ब्राह्मण की कान्ति गंभीर और दृष्टि कठिन थी। देखने से उन्हें निर्दय या अनीति का पात्र जान पड़ने की सम्भावना नहीं थी, अथच मन में शंका होती थी। आगन्तुक युवक को देखते ही उनका वह कठोर भाव जैसे दूर हो गया; मुख की गंभीरता या रूखेपन पर प्रसन्नता का संचार हुआ। आगन्तुक ने ब्राह्मण को प्रणाम किया और सामने खड़ा हो गया। ब्राह्मण ने अशीर्वाद करके कहा—बेटा हेमचन्द्र, मैं बहुत दिनों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

हेमचन्द्र ने विनीत भाव से कहा—अपराध ग्रहण न कीजिएगा, दिल्ली में काम नहीं सिद्ध हुआ। परसों यवन ने मेरा पीछा किया था, इसलिए कुछ सावधान होकर आना पड़ा। इसी से देर हो गई।

ब्राह्मण ने कहा—दिल्ली की सब खबर मैं सुन चुका हूँ। बख्तियार खिलजी को हाथी मार डालता तो अच्छा ही होता। देवता का शत्रु पशु के हाथ से मारा जाता। तुमने क्यों उसके प्राण बचाये?

हेम०—इसलिये कि उसे युद्ध में अपने हाथ से मरूंगा। वह मेरे पिता का शत्रु है, मेरे पिता के राज्य का चोर है। वह मेरा ही शिकार है।

ब्राह्मण—तो उसके ऊपर जिस हाथी ने बिगड़कर आक्रमण किया था, बख्तियार को छोड़कर उसे क्यों मारा?

हेम०—मैं क्या चोर की तरह बिना युद्ध के शत्रु को मारता? मैं मगध के विजेता को युद्ध में जीतकर पिता के राज्य का उद्धार करूँगा। नहीं तो मेरे मगधराज के पुत्र होने का धिक्कार है।

ब्राह्मण ने कुछ कठोर भाव से कहा—इस घटना को हुए तो बहुत दिन हो गये। इससे पहले तुम्हारे यहाँ आने की संभावना थी। तुमने क्यों देर की? तुम मथुरा गये थे?

हेमचन्द्र ने सिर झुका लिया।

ब्राह्मण ने कहा—समझ गया। तुम मथुरा गये थे। तुमने मेरा मना किया नहीं माना। जिसे देखने मथुरा गये थे, उससे क्या भेंट हुई?

अब की हेमचंद्र ने रूखेपन से कहा—भेंट जो नहीं हुई सो आप ही की दया है। मृणालिनी को आपने कहाँ भेज दिया है?

माधवाचार्य ने कहा—मैंने कहीं भेज दिया है, यह कैसे तुमने मान लिया?

हेमचंद्र ने कहा—माधवाचार्य के सिवा यह मंत्रणा किसकी है? मैंने मृणालिनी की धाय के मुँह से सुना है कि मृणालिनी मेरी अँगूठी देखकर कहीं चली गई है। उसका पता नहीं है। मेरी अँगूठी आपने राह-खर्च के लिए माँग ली थी। अँगूठी के बदले मैंने और रत्न देना चाहा था; किन्तु आपने नहीं लिया। तभी मुझे संदेह हुआ था। किन्तु आपको न दूँ, ऐसी कोई चीज मेरी नहीं है; इसीलिए बिना विवाद के मैंने आपको अपनी अँगूठी दे दी थी, किन्तु मेरी उस असावधानता का आपने समुचित फल दिया।

माधवाचार्य ने कहा—अगर यही बात हो तो तुम मुझ पर क्रोध न करना। तुम देवता का कार्य न पूरा करोगे तो कौन करेगा? तुम यवन को यहाँ से न मार भगाओगे तो और कौन भगावेगा? यवन का विध्वंस तुम्हारा एकमात्र ध्यान और लक्ष्य होना चाहिए। इस समय मृणालिनी क्यों तुम्हारे मन पर छाई रहे? एक बार तुम मृणालिनी की आशा से मथुरा में बैठे रहे, जिसका फल यह हुआ कि तुम्हारे बाप का राज्य तुम्हारे हाथ से निकल गया। यवन के आने के समय तुम, हेमचन्द्र, अगर मथुरा में न होकर मगध में रहते, तो मगध क्यों जीता जाता? अब फिर क्या उसी मृणालिनी के फंदे में पड़कर निश्चेष्ट बने रहोगे? माधवाचार्य का जीवन रहते यह न होगा। अतएव जहाँ मृणालिनी के रहने से तुम उसे नहीं पाओगे, वहीं मैंने उसे रखा है।

हेम०—अपने देवकार्य का उद्धार आप कीजिए। मैं यहीं तक रहा, अब कुछ न करूँगा।

माध०—तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। यही क्या तुम्हारी देवभक्ति है? अच्छा, वह भक्ति तुम में न हो। देवता अपना काम कराने के लिए तुम-जैसे मनुष्य की सहायता की अपेक्षा नहीं रखते। किन्तु तुम कायर अगर नहीं हो तो तुम किस तरह शत्रु का शासन करने से छुट्टी चाहते हो? यही क्या तुम्हारा

धी-धर्म है, यही क्या तुमने शिक्षा पाई है? राजवंश में जन्म लेकर तुम कैसे अपने राज्य का उद्धार करने से विमुख होना चाहते हो?

हेम०—राज्य, शिक्षा और सर्व, सब अतल जल में डूब जायँ!

माध०—नराधम! तुम्हारी जननी ने तुमको क्यों दस महीने दस दिन गर्भ में धारण किया था? मैंने क्यों बारह वर्ष देवाराधना करके इस पाखंडी को सब विद्याओं की शिक्षा दी?

माधवाचार्य बहुत देर तक चुपचाप गाल पर हाथ धरे चिन्ता-मग्न रहे। क्रमशः हेमचन्द्र की अनिन्द्य-गौर मुख-कान्ति दोपहर के प्रखर सूर्य की किरणों से खिले हुए कमल-पुष्प की तरह लाल होती आ रही थी। किन्तु भीतर आग भरे हुए ज्वालामुखी पर्वत के शिखर की तरह वह स्थिर भाव से खड़े रहे। अन्त को माधवाचार्य ने कहा—हेमचन्द्र, धैर्य धारण करो। मृणालिनी कहाँ है, वह मैं बता दूँगा तुमको। मृणालिनी के साथ तुम्हारा विवाह भी करा दूँगा। किन्तु इस समय मेरे परामर्श के अनुसार काम करो—पहले अपना काम सिद्ध करो।

हेमचन्द्र ने कहा—मृणालिनी कहाँ है, वह जब तक आप न बतावेंगे, तब तक मैं यवनवध के लिए शस्त्र धारण नहीं करूँगा।

माध०—और अगर मृणालिनी मर गई हो?

हेमचन्द्र की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। उन्होंने कहा—तो यह आप ही का काम है।

माधवाचार्य ने कहा—मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने ही देवकार्य के लिए उस कण्टक को विनष्ट किया है।

हेमचन्द्र के मुख की कान्ति बरसने के लिए तैयार मेघ की-सी हो गई। फुर्ती से धनुष पर बाण चढ़ाकर उन्होंने कहा—जो मृणालिनी का वध करने वाला है, वह मेरा वध्य है। इसी बाण से गुरु-हत्या, ब्रह्म-हत्या—दोनों दुष्कर्म मैं करूँगा।

माधवाचार्य हँस दिये। बोले—गुरुहत्या और ब्रह्महत्या में तुम्हें जितना आमोद है, मुझे स्त्री की हत्या में उतना नहीं है। इस समय तुमको पाप का भागी न होना होगा। मृणालिनी जीवित है। कर सको तो उसे खोजकर

निष्ठुर काम की बात तुम विस्तार से कहोगी; किन्तु कहाँ, आज तक तुमने नहीं बताया। क्यों तुम माधवाचार्य के कहने से पिता के घर को छोड़कर चली आईं ?

मृणा०—माधवाचार्य के कहने से मैं नहीं आई। मैं माधवाचार्य को जानती भी नहीं थी और अपनी इच्छा से भी यहाँ नहीं आई। एक दिन संध्या के बाद मेरी दासी ने आकर मुझे यह अँगूठी दी और कहा कि जिन्होंने यह अँगूठी दी है वह फूलबाग में तुम्हारी राह देख रहे हैं। मैंने देखा, वह हेमचन्द्र के संकेत की अँगूठी है। उन्हें जब मिलना होता था तब यह अँगूठी भेज देते थे। हमारे घर के पिछवाड़े ही बाग था। यमुना की ठंढ़ी हवा इस बाग में डोला करती थी। वहीं उनसे भेंट होती थी।

मणिमालिनी ने कहा—यह बात याद भी पड़ने पर मेरा मन खराब हो उठता है। तुम कुमारी होकर कैसे एक पुरुष के साथ एकान्त में मिलती और छिपाकर प्रेमलीला करती थीं ?

मृणा०—तुम्हारा मन खराब होने की इसमें कोई बात नहीं है सखी! वह मेरे पति हैं। उनके सिवा और कोई मेरा पति नहीं होगा, यह निश्चित है।

मणि०—किन्तु अभी तो वह तुम्हारे स्वामी नहीं हुए। बुरा न मानना सखी! मैं तुमको बहन की तरह मानती और प्यार करती हूँ। इसी से कहती हूँ।

मृणालिनी ने सिर झुका लिया। क्षण भर बाद आँखों के आँसू पोंछकर बोली—मणिमालिनी! इस विदेश में मेरा आत्मीय कोई नहीं है। मुझे अच्छी सलाह दे, ऐसा कोई नहीं है। जो लोग मुझे प्यार करते थे, उनसे फिर कभी भेंट होने का भरोसा भी नहीं है। केवल तुम ही मेरी सखी हो—तुम मुझे प्यार न करोगी तो और कौन करेगा ?

मणि०—मैं तुम्हें प्यार करूँगी, प्यार करती भी हूँ। किन्तु जब ... बात का ख्याल आता है, तब सोचती हूँ—

मृणालिनी फिर चुपचाप रोने लगी। बोली—सखी, तुम्हारे मुँह ... बात मुझसे सही नहीं जाती। अगर तुम मेरे आगे कसम खाओ कि ... कहूँगी, वह इस संसार में किसी के आगे तुम प्रकट नहीं ...

बातें तुम्हारे आगे प्रकट करके कह सकती हूँ। तब तुम मुझको दोष न दोगी और पूर्णरूप से मुझे प्यार करोगी।

मणि०—मैं इस बात की कसम खाती हूँ।

मृणा०—यों नहीं, तुम्हारे केशों में जो देवता पर चढ़ा फूल लगा है, उसे छूकर कसम खाओ।

मणिमालिनी ने वही किया।

तब मृणालिनी ने मणिमालिनी के कान में जो बात कही, उसकी यहाँ विस्तृत व्याख्या देने की जरूरत नहीं है। उसे सुनकर मणिमालिनी ने परम सन्तोष प्रकट किया। दोनो की गुप्त बातचीत समाप्त हुई।

मणिमालिनी ने कहा—उसके बाद तुम माधवाचार्य के साथ किस प्रकार आई? जो वृत्तान्त कह रही थी, उसे कहो।

मृणालिनी ने कहा—हेमचन्द्र की अँगूठी देखकर उनसे मिलने की आशा से मैं बाग में गई। तब उस दूती ने कहा कि "राजपुत्र नाव पर हैं। नाव तीर पर लगी हुई है। वहाँ चलो।" मैंने हेमचन्द्र को बहुत दिनों से देखा न था, बहुत व्यग्र थी उनसे मिलने को। इसी से मैंने बहुत सोचा-विचारा नहीं। किनारे पर आकर देखा, सचमुच एक नाव लगी है। उसके बाहर एक आदमी खड़ा है। मैंने सोचा कि वह हेमचन्द्र खड़े हैं। मैं नाव के पास गई नाव पर जो पुरुष खड़ा था, उसने हाथ पकड़कर मुझे नाव पर चढ़ा लिया। वैसे ही माँझियों ने नाव खोल दी। किन्तु मैंने उस पुरुष के स्पर्श से ही जान लिया कि वह हेमचन्द्र नहीं है।

मणि०—और तुम वैसे ही चिल्ला उठीं?

मृणा०—नहीं, चिल्लाई नहीं। एक बार जी चाहा था कि चिल्लाऊँ, पर से आवाज ही नहीं निकली।

मणि०—मैं होती तो नदी में फाँद पड़ती।

मृणा०—हेमचन्द्र को देखे बिना कैसे मरती?

मणि०—इसके बाद क्या हुआ?

मृणा०—पहले ही उस व्यक्ति ने 'मा' कहकर कहा—मैं तुमको मा मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। तुम कुछ शंका न करो। मेरा नाम

माधवाचार्य है । मैं हेमचन्द्र का गुरु हूँ। केवल हेमचन्द्र ही का गुरु नहीं हूँ । भारतवर्ष के अनेक राजाओं के साथ मेरा यही सम्बन्ध है । मैं इस समय किसी देवकार्य में लगा हुआ हूँ और उसमें हेमचन्द्र मेरे प्रधान सहायक हैं । और तुम उसमें प्रधान विघ्न हो।

मैंने कहा—मैं विघ्न हूँ ?

माधवाचार्य ने कहा—हाँ तुम विघ्न हो । यवनों को जीतना, हिन्दू-राज्य का फिर उद्धार करना कोई सहज काम नहीं है । हेमचन्द्र के सिवा और कोई यह कार्य नहीं कर सकता । हेमचन्द्र भी जब तक इसी काम में एकाग्र मन नहीं होते तब तक उनके द्वारा भी यह काम सिद्ध न होगा। जब तक वह तुमसे सहज में मिल सकेंगे, तब तक तुम्हारे सिवा और किसी ओर मन नहीं लगा सकेंगे। अब यवनों का विनाश कौन करे ?

मैंने कहा—मैं समझ गई । पहले मुझे मारे बिना यवन न मारे जा सकेंगे। आपके शिष्य ने क्या आपके हाथों अँगूठी भेजकर मुझे मारने की आज्ञा दी है ?

मणि०—इतनी बातें तुमने उस बूढ़े से कैसे कीं ?

मृणा०—मुझे बड़ा क्रोध हो आया था, बूढ़े की बातों से मेरे हाड़ जल उठे थे । फिर आपत्काल में लज्जा कैसी ? माधवाचार्य ने मुझे ढीठ और बोलने मे तेज समझा । वह मुसकराये । बोले—हेमचन्द्र को यह नहीं मालूम कि मैं तुमको इस तरह हस्तगत करूँगा।

मैंने मन में कहा—तो फिर जिसके लिए मैंने यह जीवन रखा है, उसकी अनुमति के बिना इसे नष्ट नहीं करूँगी।

माधवाचार्य कहने लगे—तुमको प्राणत्याग न करना होगा । फिलहाल सिर्फ हेमचन्द्र को त्याग करना होगा । इसी में उनका परम मंगल है । जिससे वह राजेश्वर होकर तुमको राजरानी बना सकें, वही क्या तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है ? तुम्हारे प्रेम के मोहिनी-मंत्र से वह कायर बने हुए हैं । उनका वह भाव दूर करना क्या तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है ?—उचित नहीं है ?

मैंने कहा—मुझसे भेंट करना अगर उचित न होगा तो वह कभी मुझसे नहीं मिलेंगे।

माधवाचार्य ने कहा—बालक अपने मन में सोचते हैं कि बालक और वृद्ध दोनो की विवेचना-शक्ति समान होती है; किन्तु ऐसी बात नहीं है। हेमचन्द्र की अपेक्षा हम बूढ़े अधिक परिणामदर्शी अथवा दूरदर्शी होते हैं। इसमें तुम सन्देह न करना। फिर तुम राजी हो या न हो, मैंने जो इरादा किया है, उसे मैं अवश्य पूर्ण करूँगा। मैं तुमको देशान्तर में ले जाऊँगा। गौड़-देश में अत्यन्त शान्तप्रकृति एक ब्राह्मण के घर में मैं तुमको रख आऊँगा। वह तुम्हें अपनी कन्या की तरह यत्न से रखेंगे। एक वर्ष बाद मैं तुमको तुम्हारे पिता के पास पहुँचा आऊँगा। और उस समय हेमचन्द्र चाहे जिस हालत में हों तुम्हारे साथ उनका ब्याह कराऊँगा, यह मैं शपथ करता हूँ।

चाहे उनकी इस बात से हो या अपनी लाचारी से हो, अगत्या मैं चुप हो रही। उसके बाद तुम्हारे यहाँ आ गई।—यह क्या है, वह सखी ?

तृतीय परिच्छेद

भिखारिन

दोनो सखियाँ इस तरह बातें कर रही थीं, इसी समय किसी कोमल कण्ठ से निकला हुआ यह मधुर संगीत उन्होंने सुना—

मथुरा-वासिनि, मधुर-हासिनि,
श्यामविलासिनि रे।

मृणालिनी ने कहा—यह गान कहाँ हो रहा है सखी ?

मणिमालिनी ने कहा—बाहर की ड्योढ़ी में कोई गा रहा है

गायिका गाने लगी—

कहो तो नागरि, गेह परिहरि,
काहे विवासिनि रे।

मृणा०—कौन गा रहा है—जानती हो सखी ?

मणि०—कोई भिखारिन होगी।

फिर सुन पड़ा—

वृन्दावनधन, गोपिकामोहन,
काहे तुम त्यागी रे ?
देश देश पर, सो श्यामसुन्दर,
तुव हित फिरै बड़भागी रे।

मृणालिनी ने आवेग के साथ कहा—सखी ! सखी ! उसे घर के भीतर बुला लाओ।

मणिमालिनी गायिका को बुलाने गई। उधर वह गाने लगी—

फूले हैं नलिन, यमुना-पुलिन,
बहुत पिपासा रे,
चंद्रमाशालिनी, ये मधुयामिनी,
मिटी नहीं आशा रे।

इसी समय मणिमालिनी उसे बुलाकर घर के भीतर ले आई। गायिका पहले ही के सिलसिले में गाने लगी—

रैनि रस-भरी, कहो तो सुन्दरी,
कहाँ मिले देखा रे।
सुन जाओ चलि, बाजे रे मुरलि,
बन-बन एका रे।

मृणालिनी ने उससे कहा—तुम्हारा गला बहुत मीठा है। तुम इस गीत को फिर गाओ।

यहाँ गायिका की रूपरेखा का कुछ वर्णन कर दिया जाय। उसकी अवस्था यही सोलह साल की होगी। वह षोड़शी ठिगने कद की और कृष्णवर्ण थी। उसका रंग पक्का काला होने पर भी ऐसा काला न था कि उसकी देह पर अगर भौंरा बैठ जाता तो दिखाई न पड़ता, अथवा शरीर में स्याही पोतने से यह जान पड़ता कि उसने पानी से नहाया है, या पानी से नहाने पर जान पड़ता कि उसने स्याही पोत ली है। जैसा काला रंग अपने घर में होने पर हम उसे साँवला या श्यामवर्ण कहते हैं और पराये घर में होने पर उसे कोयले-सा काला कहते हैं, वैसा ही इसका कृष्णवर्ण था।

किन्तु रंग कैसा ही हो, भिखारिन कुरूप नहीं थी उसके अंग साफ़, सुमार्जित और चमकीले थे। मुख पर प्रफुल्लता और लावण्य की झलक थी। आँखें दोनों बड़ी और चंचल थीं—हँसती-सी। आँखों की पुतली गहरी काली थी और एक आँख की पुतली के पास एक काला तिल भी था। होठ पतले और लाल-लाल थे। उनके भीतर बहुत साफ कुंदकली के समान दाँतों की पंक्तियाँ थीं। सिर के बाल महीन थे। गर्दन के ऊपर नागिन-सी मोहिनी चोटी जिसमें एक जूही की माला लपेटी हुई थी। यौवन के आगमन से शरीर की गढ़न सुन्दर सुडौल हो गई थी, जैसे किसी चतुर कारीगर ने काले पत्थर को काटकर एक पुतली खड़ी कर दी हो। कपड़े बहुत साधारण, लेकिन साफ-सुथरे थे। उनमें धूल-कीचड़ का एक भी दाग नहीं था। अंग आभूषणों से बिल्कुल खाली नहीं थे—जो अलंकार थे वे एक भिखारी के योग्य ही थे। कलाइयों में पीतल के कड़े, गले में तुलसी-काष्ठ की कंठी, नाक पर एक छोटा-सा वैष्णवी तिलक, भौंहों के बीच चंदन की एक नन्हीं-सी बिंदी।

वह आज्ञा के अनुसार पूर्ववत् गाने लगी—

मथुरा - वासिनि, मधुर - हासिनि,
श्यामविलासिनि रे।
कहो तो नागरि, गेह परिहरि,
काहे विवासिनि रे॥
वृन्दावन - धन, गोपिका - मोहन,
काहे तुम त्यागी रे।
देश देश पर, सो श्यामसुन्दर,
तुव हित फिरे बड़भागी रे॥

फूले हैं नलिन, यमुना - पुलिन,
बहुत पिपासा रे।
चंद्रमाशालिनी, ये मधु - यामिनी,
मिटी नहीं आशा रे॥

रैनि रस-भरी, कहो तो सुन्दरी;
कहाँ मिले देखा रे।
सुन जाओ ग्वालि, बाजे रे मुरलि
बन-बन एका रे ॥*

गीत समाप्त होने पर मृणालिनी ने कहा—तुम बहुत अच्छा गाती हो।—सखी मणिमालिनी, इसे कुछ दिया जाय तो अच्छा हो। इसे कुछ दो न।

मणिमालिनी उसे देने के लिए पुरस्कार लेने गई। इसी बीच में मृणालिनी ने उस बालिका को पास बुलाकर चुपके से पूछा—सुनो भिखारिन, तुम्हारा नाम क्या है ?

भिखा०—मेरा नाम गिरिजाया है।

मृणा०—तुम्हारा घर कहाँ है ?

भिखा०—इसी नगर में रहती हूँ।

मृणा०—तुम क्या गीत गाकर ही जीविका चलाती हो ?

भिखा०—और तो कुछ जानती नहीं।

मृणा०—ये सब गीत तुम्हें कौन सिखाता है ?

भिखा०—जहाँ जो सुना, सीख लिया।

मृणा०—यह गीत कहाँ सीखा ?

भिखा०—एक बैपारी ने मुझे सिखाया है।

मृणा०—वह बैपारी कहाँ रहता है ?

भिखा०—इसी नगर में रहता है।

मृणालिनी का चेहरा वैसे ही खिल उठा जैसे प्रातःकाल सूर्य की किरणों के स्पर्श से कमल खिल उठता है। मृणालिनी ने कहा—बैपारी तो बनिज करते हैं। वह बैपारी काहे का बनिज करता है ?

भिखा०—सबका जो धंधा है, वही उसका भी है।

मृणा०—वह काहे का धंधा है ?

---

* यह गीत धीमे तिताले ताल और जयजयवन्ती रागिनी में गाना चाहिए

भिखा०—बातों का धंधा।

मृणा०—बेशक यह नया धंधा है। अच्छा उसमें नफा-नुकसान कैसा है?

भिखा०—इसमें नफा प्रेम है और नुकसान है झगड़ा।

मृणा०—तुम भी बेशक रोजगारी हो! अच्छा, इसका महाजन कौन है?

भिखा०—जो महा जन है।

मृणा०—तुम उसकी क्या हो?

भिखा०—एक मुटिया।

मृणा०—अच्छा, अपनी मोट उतारो। उसमें क्या सामग्री है, देखूँ?

भिखा०—वह सामग्री देखी नहीं, सुनी जाती है।

मृणा०—अच्छा सुनूँ।

गिरिजाया गाने लगी—

यमुनार जले, मोर कि निधि मिलिल—
झाँप दिया माशि जले, यतने तूलिया गले,
परेछिनू कुतूहले ये रतने—
निद्रार आवेशे मोर, गृहे ते पशिल चोर,
कण्ठेर काटिल डोर मणि हरे निल।

इसका अर्थ यह है—"यमुना के जल में मुझे कैसी निधि मिली। मैं जल में फाँदकर दुसा, और यत्न से जिस रत्न को वहाँ से निकालकर कौतूहल से कंठ में धारण किया था, उसे मेरे सोते समय चोर ने घर में घुसकर, डोर काटकर चुरा लिया।"

मृणालिनी की आँखों में आँसू भर आये, स्वर गद्‌गद हो उठा। फिर भी उसने हँसकर कहा—यह किस चोर की कथा है?

भिखा०—बेपारी ने कहा है, चोरी के माल ही का वह बेपार करते हैं।

मृणा०—उनसे कहना कि चोरी के व्यापार में साधु लोगों के प्राण नहीं बचते।

गिरि०—शायद व्यापारी के भी नहीं?

मृणा०—क्यों, व्यापारी का क्या है?

गिरिजाया ने गाया—

> घाट-घाट तट माठ फिरि फिरिनू बहु देश।
> काहाँ मेरे कान्तवरण काहाँ राज वेश॥
> हिया पर रोपनू पंकज, कैनू यतन भारि।
> सहि पंकज काहाँ मोर, काहाँ मृणाल हामारि॥

अर्थात्—घाट-घाट, मैदान और नदी-तटों में फिरता हुआ मैं बहुत देशों में घूमता रहा। कहाँ है मेरा सुन्दर रूप और कहाँ है मेरा राजवेश—वह नहीं रहा। मैंने अपने हृदय पर कमल रोपा और भारी यत्न किया। कहाँ है मेरा वह कमल और कहाँ है मेरा मृणाल ?

मृणालिनी ने स्नेह सहित कोमल स्वर में कहा—मृणाल कहाँ है ? मैं उसका पता दे सकती हूँ, तुम याद रख सकोगी ?

गिरिजाया ने कहा—रख सकूँगी। बताओ, कहाँ है ?

मृणालिनी ने कहा—

> कण्टके गठिल विधि, मृणाल अधमे।
> जले तारे डुबाइल पीड़िया मरमे॥
> राजहंस देखि एक नयन रंजन।
> चरण बेड़िया तारे करिल बन्धन॥
> बले, हंसराज कोथा करिबे गमन।
> हृदय - कमले दिब तोमार आसन॥
> आसिया बसिल हंस हृदय कमले।
> काँपिल - कण्टक सह-मृणालिनी जले॥
> हेन काले कालो मेघ उठिल आकाशे।
> उड़िल मरालराज मानस - विलासे॥
> भाँगिल हृदय पद्म तार वेग भरे।
> डूबिया अतल जले मृणालिनी मरे॥

अर्थात्—विधाता ने अधम मृणाल को काँटों से गढ़ा। उसे मर्म-पीड़ा देकर जल में डुबाया। एक नेत्रों को आनंद देनेवाले राजहंस को देखकर मृणाल ने उसके चरण को घेरकर उसे बाँध लिया। उससे कहा—

हे राजहंस, तुम कहाँ जाओगे ? मैं अपने हृदय-कमल में आसन देकर तुमको बिठाऊँगी। हंस आकर उसके हृदय-कमल पर बैठा। मृणालिनी कंटक-सहित जल में काँप उठी। इसी समय एक काला मेघ आकाश में उठा। राजहंस मानस में विलास करने के लिए उड़ गया। उसके वेग से हृदय-पद्म टूट गया और मृणालिनी अतल जल में डूबकर मर रही है।

मृणालिनी ने पूछा—क्यों गिरिजाया, सीखकर याद कर सकोगी ?

गिरि०—हाँ, सो कर सकूँगी। मगर क्या आँसुओं तक को सीखूँ ?

मृणा०—नहीं। इस रोजगार में मुझे मुनाफा बस इतना ही है।

मृणालिनी गिरिजाया को इस कविता का अभ्यास करा रही थी, इसी समय मणिमालिनी के पैरों की चाप सुन पड़ी। सभी यह जान गये थे कि मणिमालिनी उसकी सखी है और उससे स्नेह करती है। तथापि मृणालिनी को ऐसा विश्वास नहीं हुआ कि वह अपने पिता की प्रतिज्ञा तोड़ने में उसकी सहायता करेगी। अतएव ये सब बातें सखी से छिपाने का यत्न करती हुई वह भिखारिन से बोली—आज अब और नहीं। तुम उस बैपारी से मिलना। अपनी मोट कल फिर लाना। अगर खरीदने लायक कोई चीज हुई तो मैं खरीद लूँगी।

गिरिजाया विदा हो गयी। मृणालिनी ने उसे जो पारितोषिक देने का विचार किया था उसे वह भूल गई थी।

गिरिजाया कुछ पग चली गई थी। मणिमालिनी ने उसे लौटाकर कुछ चावल, एक गुच्छा केले, एक पुरानी धोती और कुछ पैसे लाकर दिये। मृणालिनी भी अपना एक पुराना वस्त्र देने लगी। देते समय उसके कान में कहा—मुझे धीरज नहीं होता। कल तक मैं अपेक्षा नहीं कर सकूँगी। तुम आज एक पहर रात गये इस घर के उत्तर की दीवार के नीचे ठहरना, वहाँ तुमसे मेरी भेंट होगी। तुम्हारे बैपारी अगर आवें तो उनको साथ ले आना।

गिरिजाया बोली—मैं समझ गई। मैं निश्चय आऊँगी।

मृणालिनी मणिमालिनी के पास लौटकर आई तब मणिमालिनी ने पूछा—सच ! भिखारिन के कान में क्या कह रही थी ?

मृणालिनी ने कहा—

कि बलिब सई ।
सई मनेर कथा कई, मनेर कथा सई ।
काने-काने कि कथाटि ब'लेदिलि ओई ।
सई फिरे क'ना सई,सई फिरे क'ना सई ।
सई कोन कथा कब, नइले कारो नई ।

अर्थात्—सखी, मन की बात कहती हूँ, मन की बात सखी । कानों में वह कौन बात कह दी ? सखी, लौटकर कह न वही ; सखी, लौटकर कह न वही । सखी, कौन बात कहूँ । नहीं तो किसी की नहीं ।

मणिमालिनी ने हँसकर कहा—तुझे यह क्या हो गया सखी ? मृणालिनी ने कहा—तुम्हीं को सखी ।

चतुर्थ परिच्छेद

दूती

लक्ष्मणावती नगरी के दूसरे स्थान में सर्वधन व्यापारी के घर में हेमचन्द्र रहते थे । व्यापारी के द्वार पर एक अशोक का वृक्ष था । तीसरे पहर उसके नीचे बैठकर एक फूली हुई अशोक की डाल को हेमचन्द्र योंही छुरी से टुकड़े-टुकड़े करके काट रहे थे और बार-बार रास्ते की ओर देख रहे थे, जैसे किसी की राह देख रहे हों । जिसकी प्रतीक्षा कर रहे थे, वह नहीं आया । उनका सेवक दिग्विजय आया । हेमचन्द्र ने दिग्विजय से कहा—दिग्विजय, भिखारिन वह आज अब तक नहीं आई । मैं बहुत व्यस्त और उद्विग्न हूँ । तुम एक बार उसकी खोज में जाओ ।

"जो आज्ञा" कहकर दिग्विजय गिरिजाया की खोज में चल दिया, नगरी की सड़क पर गिरिजाया से उसकी भेंट हुई ।

गिरिजाया ने कहा—कौन, दिग्भ्रिजय ?

दिग्विजय ने बिगड़कर कहा—मेरा नाम दिग्विजय है ।

गिरि०—अच्छा यही सही। कहो दिग्विजय, आज कौन दिशा जीतने चले हो?

दि०—तुम्हारी दिशा।

गिरि०—मैं क्या कोई दिशा हूँ? तुझे दिग्विदिक-ज्ञान नहीं है।

दि०—कैसे हो? तुम एकदम अन्धकार हो; इसमें कहीं दिशा सूझ सकती है? अच्छा अब चलो। मालिक ने तुमको बुलाया है।

गिरि०—क्यों?

दि०—जान पड़ता है, तुम्हारे साथ मेरा व्याह करेंगे।

गिरि०—क्यों, क्या तुम्हारी मुखाग्नि करनेवाला (मुँह में आग लगाने वाला) और कोई नहीं मिला?

दि०—नहीं। यह काम तुम्हीं को करना होगा। अब चलो।

गिरि०—दूसरों के लिए ही मेरा जलम बीता। अच्छा तो चलो।

यह कहकर गिरिजाया दिग्विजय के साथ चली। दिग्विजय अशोक के नीचे खड़े हेमचन्द्र को दिखाकर अन्यत्र चल दिया। हेमचन्द्र उस समय अन्यमनस्क भाव से गुनगुना रहे थे—

फूले हैं नलिन, यमुना पुलिन,
बहुत पियासा रे।

गिरिजाया ने पीछे से कहा—

चंद्रमाशालिनी, ये मधुयामिनी,
मिटी नहीं आशा रे।

गिरिजाया को देखकर हेमचन्द्र का चेहरा खिल गया। बोले—कौन, गिरिजाया? आशा क्या मिटी?

गिरि०—किसकी आशा? आपकी या मेरी?

हेम०—मेरी आशा। तभी तुम्हारी भी पूरी होगी।

गिरि०—आपकी आशा कैसे मिटेगी? लोग कहते हैं, राज-रजवड़ों की आशा किसी तरह नहीं मिटती।

हेम०—मेरी तो अति साधारण आशा है।

गिरि०---अगर कभी मुझे मृणालिनी के दर्शन हुए तो उनसे यह बात कहूँगी।

हेमचन्द्र के मन में विषाद छा गया। बोले—तो क्या आज मृणालिनी का पता नहीं चला? आज तुम किस मोहल्ले में गीत गा रही थीं?

गिरि०---अनेक मोहल्लों में। नित्य-नित्य मोहल्लों के नाम आपके आगे कहाँ तक गिनाऊँ? और बात कहिए।

हेमचन्द्र ने एक साँस छोड़कर कहा---समझ गया, विधाता ही मुझसे विमुख हैं। अच्छा, कल फिर पता लगाने जाना।

गिरिबाला प्रणाम करके झूठमूठ जाने का उद्योग करने लगी। जाते समय हेमचन्द्र ने उससे कहा---गिरिजाया, तुम हँसती नहीं हो, किन्तु तुम्हारी आँखें हँस रही हैं। आज क्या तुम्हारे गान को सुनकर किसी ने कुछ कहा है?

गिरि०---कौन क्या कहेगा? एक औरत मारने दौड़ी थी। बोली---मथुरावासिनी के लिए श्यामसुन्दर के सिरदर्द हो रहा है न!

हेमचन्द्र एक लंबी साँस छोड़कर अस्फुट स्वर में जैसे स्वगत कहने लगे--इतना यत्न करके भी अगर पता न पाया तो अब और आशा करना वृथा है। क्यों व्यर्थ समय नष्ट करके अपने काम को चौपट करूँ!---गिरिजाया, कल मैं तुम्हारे नगर से विदा हो जाऊँगा।

"तथास्तु" कहकर गिरिजाया गुनगुनाने लगी---

शुनि जाओ चलि, बाजेरे मुरलि।
बन-बन एका रे।

हेमचंद्र ने कहा---यह गाना बंद करो। और गाओ।

गिरिजाया ने गाया—-

ये फूल फूटिल सखि, गृह-तरु-शाखे।
केन रे पवना उड़ालि ताके॥

अर्थात्---सखी, जो फूल घर के वृक्ष की डाल में खिला था, उसे पवन ने क्यों उड़ाकर (दूर) फेंक दिया!

हेमचन्द्र ने कहा---हवा में जो फूल उड़ जाता है, उसके लिए दुःख क्या? कोई अच्छा-सा गीत गाओ।

गिरिजाया ने गाया--

कंटके गठिल विधि मृणाल अधमे।
जले तारे डुबाइल पीड़िया मरमे॥

हेम०—क्या - क्या ? मृणाल क्या ?

गिरि०--कंटके गठिल विधि मृणाल अधमे।
जले मारे डुलाइल पीड़िया मरमे॥
राजहंस देखि एक नयन-रंजन।
चरण बेड़िया तारे करिल बंधन॥

ना, और गाना गाऊँ।

हेम०--ना-ना-ना-ना--यही गाना गाओ, यही गाना गाओ तुम राक्षसी।

गिरि०---

बोले राजहंस, कोथा करिबे गमन।
हृदय-कमले दिब तोमार आसन॥
आसिया बसिल हंस हृदयकमले।
काँपिल कण्टक सह मृणालिनी जले॥

हेम०---गिरिजाया! यह गीत तुमको किसने सिखाया?

गिरि०--(हँसती हुई)—

हेन काले काल मेघ उठिल आकाशे।
उड़िल मराल राज मानस-विलासे॥
भाँगिल हृदयपद्म तार बेगारे।
डुबिया अतल जले मृणालिनी मरे॥*

हेमचन्द्र ने आँखों में आँसू भरकर गद्गद स्वर में गिरिजाया से कहा—यह मेरी ही मृणालिनी है। तुमने उसे कहाँ देखा?

गिरि०--देखा सरोवर में। हवा के झकोरों से मृणाल, ऊपर मृणालिनी काँप रही है

---

* इस सम्पूर्ण गीत का हिन्दी-अनुवाद पहले दिया जा चुका है।
—अनुवादक

हेम०—अब रूपक छोड़ो, मेरी बात का जवाब दो---कहाँ है मृणालिनी ?

गिरि०---इसी नगर में ।

हेमचन्द्र ने कुछ रुष्ट होकर रूखे स्वर में कहा--सो तो मैं बहुत दिनों से जानता हूँ । इसी नगर में किस जगह ?

गिरि०---हृषीकेश शर्मा के घर में है ।

हेम०---कैसी दुष्ट है तू ! यह बात तो मैंने ही तुझे बताई थी । अब तक तो तू उसका पता लगा नहीं सकी---अब क्या पता लगाया है, सो बता ।

गिरि०—पता लगा लिया है ।

हेमचन्द्र ने दो बूँद--केवल दो बूँद आँसू आँखों से गिराये । फिर कहा--वह यहाँ से कितनी दूर है ?

गिरि०---बहुत दूर ।

हेम०---यहाँ से किस ओर जाना होता है ?

गिरि०---यहाँ से दक्षिण, फिर पूर्व, उसके बाद उत्तर, उसके बाद पश्चिम---

हेमचन्द्र ने घूँसा तानकर---इस समय मसखरापन छोड़ दे, नहीं तो तेरा सिर फोड़ दूँगा ।

गिरि०--शान्त होइए । रास्ता बता देने से क्या आप उसे जान सकेंगे या पहचान लेंगे ? जब ऐसा नहीं कर सकते तब पूछना बेकार है । आज्ञा दीजिएगा तो मैं आपको अपने साथ ले चलूँगी ।

मेघमुक्त सूर्य की तरह हेमचन्द्र का मुख प्रफुल्ल प्रसन्न हो उठा । उन्होंने कहा—तुम्हारी सब कामनाएँ सिद्ध हों ।---अच्छा बताओ, मृणालिनी ने क्या कहा ?

गिरि०—वह तो बता चुकी—

डूबिया अतल जले मृणालिनी मरे ।

हेम०—मृणालिनी कैसी है ?

गिरि०—देखा, शरीर में कोई पीड़ा नहीं है ।

हेम०—सुख में है या क्लेश में है—क्या समझी ?

गिरि०—शरीर में गहने और अच्छे कपड़े पहने हैं—और हृषीकेश ब्राह्मण की कन्या की सहेली हैं।

हेम०—तू जहन्नुम में जा!—अरे मैं पूछता हूँ कि उसके मन की बात कुछ समझ में आई?

गिरि०—वर्षाकाल के पद्म की तरह मुख आँसुओं से भीगा देखा।

हेम०—पराये घर में किस तरह है?

गिरि०—इस अशोकवृक्ष के फूलों के गुच्छे की तरह।

हेम०—गिरिजाया, तू अवस्था मे बालिकामात्र होने पर भी बड़ी चतुर है। तुझ-जैसी बालिका मैंने और नहीं देखी।

गिरि०—सिर तोड़ने के लायक पात्र भी ऐसा और नहीं देखा।

हेम०—उसका बुरा न मानना। मृणालिनी ने और क्या कहा?

गिरि०—जा दिन जानकी—

हेम०—फिर वही?

गिरि०—जा दिन जानकी रघुवीर निहारे।—

हेमचन्द्र ने लपककर गिरिजाया के बाल पकड़कर खींचे।

तब उसने कहा—छोड़िए! बताती हूँ—बताती हूँ।—

"बताओ" कहकर हेमचन्द्र ने बाल छोड़ दिये।

तब गिरिजाया ने आदि से अन्त तक मृणालिनी के साथ अपने वार्तालाप का सब वृत्तान्त ब्योरेवार कह सुनाया। फिर कहा—महाशय, आप अगर मृणालिनी को देखना चाहते हैं तो मेरे साथ एक पहर रात गये चलिएगा।

गिरिजाया का कथन समाप्त होने पर हेमचन्द्र बहुत देर तक चुपचाप उसी अशोक वृक्ष के नीचे टहलते रहे। बहुत देर बाद कुछ न कहकर घर के भीतर गये। वहाँ से एक पत्र लिख लाकर गिरिजाया के हाथ में दिया और कहा—इस समय मृणालिनी से मिलने का मुझे अधिकार नहीं है। तुम रात को वादे के माफिक उनसे मिलना और यह पत्र उन्हें दे देना। उनसे कहना—देवता प्रसन्न हुए तो शीघ्र एक वर्ष के भीतर ही उनसे मेरी भेंट होगी।—मृणालिनी क्या कहती है, यह आज रात को ही मुझसे कह जाना।

गिरिबाला के विदा होने पर हेमचन्द्र बड़ी देर तक चिन्तित अन्तःकरण से उसी अशोकवृक्ष के तले तृण-शय्या पर लेटे रहे। बाँह के ऊपर मस्तक रखकर पृथ्वी की ओर मुख किये वह लेटे थे। कुछ देर बाद सहसा उनकी पीठ पर किसी के कड़े हाथ का स्पर्श हुआ। मुँह फेरकर उन्होंने देखा, सामने माधवाचार्य खड़े थे।

माधवाचार्य ने कहा--वत्स ! उठो। मैं तुम पर असन्तुष्ट हुआ हूँ--सन्तुष्ट भी हूँ। तुम मुझे देखकर विस्मित की तरह क्यों ताक रहे हो ?

हेमचन्द्र ने कहा---आप यहाँ कहाँ से आगये ?

माधवाचार्य इसका कोई उत्तर न देकर कहने लगे--तुम अब तक नवद्वीप न जाकर राह में विलम रहे हो, इससे मैं तुम पर असन्तुष्ट हुआ हूँ। और मृणालिनी का पता पाकर भी अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये तुमने जो भेंट के सुयोग की उपेक्षा की, इसलिये तुम पर सन्तुष्ट भी हूँ। तुमको कुछ न कहूँगा--तिरस्कार न करूँगा। किन्तु अब यहाँ तुम और विलंब न करो। मृणालिनी के प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा न करो। जोशीले हृदय का विश्वास नहीं है। मैं आज नवद्वीप के लिए यात्रा करूँगा। नाव तैयार है। अपने अस्त्र-शस्त्र आदि घर के भीतर से ले आओ। मेरे साथ चलो।

हेमचन्द्र ने एक निश्वास लेकर कहाँ---इसमें कुछ हानि नहीं। मैंने सब आशा-भरोसा छोड़ दिया है। चलिए। किन्तु आप इच्छानुसार सर्वत्र जाने की शक्ति रखते हैं या अन्तर्यामी हैं ?

इतना कहकर वह फिर घर के भीतर गये, और गृहस्वामी व्यापारी से विदा होकर अपना सब सामान एक सेवक के कंधे पर लदाकर आप माधवाचार्य के पीछे चल दिये।

---:※:---

पंचम परिच्छेद

लुब्ध

मृणालिनी या गिरिजाया, दोनों में से कोई अपने वादे को

नहीं भूली। दोनो एक पहर रात गये हृषीकेश के घर के पास आकर मिलीं। मृणालिनी ने गिरिजाया को देखते ही कहा---हेमचन्द्र कहां हैं ?

गिरिजाया ने कहा---वह नहीं आये।

"नहीं आये !" ये शब्द मृणालिनी के हृदय से निकले। क्षण भर दोनों चुप रहीं। इसके बाद मृणालिनी ने पूछा---क्यों नहीं आये ?

गिरि०---सो तो मैं नहीं जानती। यह पत्र दिया है।

इतना कहकर गिरिजाया ने मृणालिनी के हाथ मे हेमचन्द्र का पत्र दिया। मृणालिनी ने कहा---इसे किस तरह पढ़ूँ ? घर मे जाकर दीपक जलाकर पढ़ने से मणिमालिनी जाग पड़ेगी।

गिरिजाया ने कहा---अधीर न होओ। मैंने दीपक, तेल, चकमक पत्थर और शोला, सब सामान ला रखा है। अभी रोशनी जलाती हूँ।

गिरिजाया ने फुर्ती से आग पैदा करके दिया जलाया। चकमक पत्थर ठोकने का शब्द एक घर में रहनेवाले आदमी के कानों में पहुँचा---दीपक का प्रकाश उसने देख पाया।

गिरिजाया के दीपक जलाने पर मृणालिनी निम्नलिखित पत्र को मन-ही-मन पढ़ने लगी। उसमें लिखा था---

"मृणालिनी क्या कहकर तुमको पत्र लिखना शुरू करूँ ? तुम मेरे लिये घरबार छोड़कर---अपना डेरा छोड़कर पराये घर में कष्ट से दिन कट रही हो। यद्यपि दैव की कृपा से तुम्हारा पता लगा पाया हूँ, तथापि तुमसे भेंट नहीं की। इससे तुम यह समझोगी कि मेरे मन में तुम्हारे प्रति प्रेम नहीं है। अथवा और कोई स्त्री होती तो ऐसा खयाल करती, तुम न करोगी। मैंने कोई विशेष व्रत ले रखा है। अगर उसे तोड़ूँ---या उसकी अवहेलना करूँ तो निश्चय ही कुलांगार हूँ---अपने कुल को कलंकित करनेवाला होऊँगा। उस व्रत को साधने के लिए मैं गुरु के निकट प्रतिज्ञा मे बंधा हुआ हूँ। वह प्रतिज्ञा यह है कि इस स्थान में मैं तुमसे भेंट नहीं करूँगा। मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि तुम भी यह नहीं चाहोगी कि मैं तुम्हारे लिए अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ूँ। अतएव एक वर्ष किसी तरह काट डालो। इसके बाद ईश्वर प्रसन्न हुए तो शीघ्र ही तुमको राजपुत्र की पत्नी राजरानी बनाकर अपने सुख को

सम्पूर्ण करूँगा। इस कमसिन, किन्तु तेज बुद्धिवाली बालिका के हाथ इस पत्र का उत्तर भेजना। इति"

मृणालिनी ने पत्र पढ़कर गिरिजाया से कहा--गिरिजाया, मेरे पास कागज, कलम, स्याही, कुछ नहीं है, जो पत्र लिखूँ। तुम जबानी ही मेरा प्रत्युत्तर ले जाओ। तुम विश्वासी हो। मैं तुमको पुरस्कार स्वरूप अपने अंग का यह गहना देती हूँ।

गिरिजाया ने कहा—आपका उत्तर किसके पास ले जाऊँगी। उन्होंने तो पत्र देकर मुझे विदा करते समय कह दिया था कि आज रात को ही मुझे जवाब ला देना और मैंने भी इसे स्वीकार किया था। आते समय मैंने सोचा शायद तुम्हारे पास लिखने की कोई सामग्री न हो, इसी से सब सामान उनसे लेने के लिए मैं फिर उनके पास गई। लेकिन वह नहीं मिले। सुना, शाम को नवद्वीप चले गये।

मृणा०—नवद्वीप?

गिरि०—हाँ नवद्वीप।

मृणा०—शाम को ही?

गिरि०—शाम को ही। सुना, उनके गुरु आकर उन्हें अपने साथ ले गये हैं।

मृणा०—माधवाचार्य! माधवाचार्य ही मेरे लिए काल हैं।

फिर बहुत देर सोचकर मृणालिनी ने कहा—तुम जाओ गिरिजाया। अब मैं घर के बाहर नहीं ठहरूँगी।

गिरिजाया ने कहा—अच्छा मैं जाती हूँ। इतना कहकर गिरिजाया विदा हुई। उसका धीरे-धीरे गीत गुनगुनाना सुनते-सुनते मृणालिनी ने घर के भीतर प्रवेश किया। घर के भीतर प्रवेश करके मृणालिनी द्वारा बंद करने का उद्योग कर ही रही थी कि इतने में पीछे से किसी ने उसका हाथ पकड़ लिया। मृणालिनी चौंक उठी। हाथ पकड़नेवाले ने कहा—यह बात है सती-साध्वी! अबकी फंदे में पड़ गई हो। यह तुम्हारा अनुगृहीत आदमी कौन है? क्या मैं सुन सकता हूँ?

क्रोध से काँप रही मृणालिनी ने कहा—कौन, व्योमकेश ! ब्राह्मण कुल-कलंक ! हाथ छोड़ ।

व्योमकेश हृषीकेश शर्मा का बेटा था । वह आदमी घोर मूर्ख और दुश्चरित्र था । वह मृणालिनी के ऊपर विशेष अनुरक्त था और अपनी अभिलाषा पूर्ण होने की कोई संभावना नहीं है, यह जानकर बल-प्रयोग का इरादा कर चुका था किन्तु मृणालिनी प्रायः मणिमालिनी का साथ नहीं छोड़ती थी, इस कारण व्योमकेश को अब तक उसका मौक़ा नहीं मिला था ।

मृणालिनी की झिड़की के जवाब में व्योमकेश ने कहा—क्यों हाथ छोड़ूँ ? भला कहीं हाथ में आने पर छोड़ा जाता है ? छोड़ने-छाड़ने का काम क्या है भाई ? मैं एक अपने मन का दुःख कहूँ, मैं क्या मनुष्य नहीं हूँ ? अगर एक आदमी का मनोरंजन किया है तो क्या दूसरे का नहीं कर सकतीं ?

मृणा०—कुलांगार ! अगर तू ने हाथ न छोड़ा तो मैं अभी चिल्लाकर सब लोगों को जगाती हूँ ।

व्योम०—जगाओ । मैं कहूँगा कि यह अभिसार कर रही थी, मैंने इसे पकड़ा है ।

मृणा०—तो नरक में जा !

यों कहकर मृणालिनी बल प्रयोग करके हाथ छुड़ाने की चेष्टा करने लगी । किन्तु कृतकार्य न हो सकी ।

व्योमकेश ने कहा—अधीर न होओ । मेरा मनोरथ पूर्ण होते ही मैं तुमको छोड़ दूँगा । इस समय तुम्हारी सखी मणिमालिनी कहाँ है ?

मृणा०—मैं ही तुम्हारी बहन हूँ ।

व्योम०—तुम मेरे साले की बहन हो—मेरी ब्राह्मणी के भाई की बहन हो—मेरी प्राणाधिकार राधिका ! सर्वार्थ साधिका हो !

इतना कहकर व्योमकेश मृणालिनी को खींचता हुआ ले चला ।

जब माधवाचार्य ने मृणालिनी का हरण किया था तब भी उसने स्त्री स्वभाव सुलभ चीत्कार नहीं किया था—इस समय भी वह नहीं चिल्लाई ।

किन्तु मृणालिनी अब और सह नहीं सकी । मन-ही-मन लाखों ब्राह्मण को प्रणाम करके उसने व्योमकेश के जोर से एक लात मारी । व्योमकेश ने

लात खाकर कहा---अच्छा-अच्छा, मैं धन्य हो गया! इस चरण के स्पर्श से मुझे मोक्षपद प्राप्त होगा! सुन्दरी, तुम मेरी द्रौपदी हो--मैं जयद्रथ हूँ।

पीछे से किसी ने कहा---और मैं तुम्हारा अर्जुन हूँ।

अकस्मात् व्योमकेश कातर स्वर से विकट चीत्कार कर उठा--राक्षसी! तेरे दाँत में क्या विष है?

इतना कहकर व्योमकेश ने मृणालिनी का हाथ छोड़ दिया और अपनी पीठ पर हाथ फेरने लगा। स्पर्श के अनुभव से उसे मालूम हुआ कि पीठ से धाराप्रवाह रक्त निकल रहा है।

मृणालिनी हाथ छूटने पर भी भागी नहीं। वह भी उस समय व्योमकेश की ही तरह विस्मित हो रही थी। कारण, उसने तो व्योमकेश की पीठ में काटा नहीं था। भालू का-सा यह काम वह कर नहीं सकती थी। किन्तु उसी समय नक्षत्रों के प्रकाश में ठिंगने कद की बालिका-मूर्ति को उसने सामने से हटते हुए देख पाया। गिरिजाया थी वह। गिरिजाया ने उसकी धोती का छोर खींचकर धीरे से कहा--भाग चलो और वह स्वयं भाग गई।

भागना मृणालिनी का स्वभाव न था। वह भागी नहीं। व्योमकेश आँगन में खड़ा आर्तनाद कर रहा था। उसके कातर वचन सुनकर मृणालिनी गजेन्द्र-गति से अपने शयन-कक्ष की ओर आगे बढ़ी। किन्तु उस समय व्योमकेश के अर्त्तनाद से घर के भी लोग जाग उठे थे। हृषीकेश ने सामने पुत्र को इस प्रकार रोते-चिल्लाते देखकर पूछा--क्या हुआ? साँड़ की तरह क्यों चिल्ला रहे हो?

व्योमकेश ने कहा---मृणालिनी अभिसार में गई थी, मैंने उसे पकड़ लिया, इसी से उसने मेरी पीठ में बड़े जोर से काट खाया है।

हृषीकेश पुत्र के कुकर्म के बारे में कुछ नहीं जानते थे। मृणालिनी को आँगन से दालान में चढ़ते देखकर उन्हें अपने पुत्र की बात पर विश्वास हो गया। लेकिन वहाँ पर उस समय उन्होंने मृणालिनी से कुछ नहीं कहा। चुपचाप उस गजेन्द्रगामिनी के पीछे-पीछे उसके शयनागार में उपस्थित हुए।

---:*:---

छठा परिच्छेद

हृषीकेश

मृणालिनी के साथ-साथ उसके शयनगृह में आकर हृषीकेश ने कहा--मृणालिनी ! तुम्हारा यह कैसा चरित्र है ?

मृणा०--मेरा कैसा चरित्र है ?

हृषी०--तुम किसकी लड़की हो, तुम्हारा चरित्र कैसा है, यह कुछ मैं नहीं जानता। केवल गुरुदेव के अनुरोध से मैंने तुमको घर में स्थान दिया। तुम मेरी लड़की मणिमालिनी के साथ एक बिछौने पर सोती हो--तुम्हारी यह कुलटा-वृत्ति क्यों है ?

मृणा०--मुझे जो कुलटा कहता है, वह मिथ्यावादी है।

हृषीकेश के होठ क्रोध से काँप उठे ! बोले--क्या कहा पापिन ? मेरा ही अन्न खाकर पेट भरेगी और मुझी को दुर्वाक्य कहेगी ? तू मेरे घर से दूर हो--माधवाचार्य इससे भले ही क्रोध करें, लेकिन मैं ऐसी पापिन को अपने घर में रख न सकूँगा।

मृणा०--जो आज्ञा। कल सवेरे आप मुझे यहाँ न देखेंगे।

हृषीकेश समझते थे कि अब उनके घर से निकलने पर मृणालिनी आश्रय-हीन हो जायगी, अतएव वह ऐसा उत्तर नहीं दे सकती। किन्तु मृणालिनी निराश्रय होने की आशंका से कुछ नहीं डरी, यह देखकर उन्होंने समझ लिया कि उसने अपने यार के घर में आश्रय पाने के भरोसे पर ही ऐसा उत्तर दिया है। इससे हृषीकेश का क्रोध और भी बढ़ गया। उन्होंने और अधिक तेजी के साथ कहा--कल सवेरे नहीं, आज ही अभी दूर हो।

मृणा०--जो आज्ञा। मैं सखी मणिमालिनी से मिलकर आज ही चली जाऊँगी।

इतना कहकर मृणालिनी उठ खड़ी हुई।

हृषीकेश ने कहा--मणिमालिनी से कुलटा बात नहीं कर सकती।

अब की मृणालिनी की आँखों में आँसू आ गये। उसने कहा--यही

होगा, मैं उनसे नहीं मिलूँगी। मैं कुछ लेकर नहीं आई थी, कुछ लेकर जाऊँगी भी नहीं। मैं एक वस्त्र से ही जाती हूँ। आपको प्रणाम करती हूँ।

इतना कहकर द्वितीय वाक्य व्यय किये बिना मृणालिनी शयनागार से निकल गई।

जैसे घर के और लोग व्योमकेश के चीखने-चिल्लाने से जाग उठे थे, वैसे ही मणिमालिनी भी बिछौने से उठ गई थी। मृणालिनी के साथ-साथ उसके पिता सोने की कोठरी तक गये, यह देखकर वह इसी अवसर में जाकर अपने भाई से इस बारे में बातचीत कर रही थी कि क्या हुआ। सब हाल सुनकर उसने समझ लिया कि यह सब भाई का ही कुकर्म है और वह भाई को इसके लिए झिड़क रही थी। जब वह भाई को झाड़-फटकार कर लौटी तब आँगन में तेजी से बाहर जा रही मृणालिनी से उसकी भेंट हो गई। उसने पूछा--सखी, इस तरह इतनी रात को तू कहाँ जा रही है?

मृणालिनी ने कहा--सखी मणिमालिनी, तुम्हारी बड़ी उमर हो। मुझसे बात न करो---तुम्हारे पिता ने मना कर दिया है।

मणि०---यह क्या कहती हो मृणालिनी? तुम रोती क्यों हो? सर्वनाश? बापू ने न जाने क्या तुम्हें कह दिया है? लौटो सखी, क्रोध न करो।

मणिमालिनी लेकिन मृणालिनी को लौटा नहीं सकी। पहाड़ की चोटी पर स्थित शिलाखण्ड की तरह अभिमानिनी सती चली ही गई। तब जल्दी से मणिमालिनी अपने पिता के पास गई। उधर मृणालिनी भी घर के बाहर हो गई।

बाहर आकर उसने देखा, पहले के ही संकेत स्थान में गिरिजाया खड़ी है। मृणालिनी ने उसे देखकर कहा--तुम अभी खड़ी ही हो?

गिरि०---मैं तुमसे आज आने को कह आई थी। मैं खड़ी देख रही थी कि तुम आती हो या नहीं।

मृणा०---तुमने क्या ब्राह्मण को काट खाया था?

गिरि०---बुरा क्या किया? ब्राह्मण ही तो है, बैल तो नहीं!

मृणा०---लेकिन तुम तो गाना गाते-गाते चली गई थीं?

गिरि०---उसके बाद तुम दोनो की बातचीत का शब्द सुनकर लौट आई थी। देखकर याद आया, इस आदमी ने एक दिन मुझे काला चींटा कहकर ठट्ठा किया था। उस दिन मैं इसके डंक नहीं मार पाई थी---यह बाकी था। आज मौका देखकर मैंने काट लिया।---अच्छा अब तुम कहाँ जाओगी ?

मृणा०—तुम्हारे रहने का कोई घर है ?

गिरि०—है। पत्तों की छाई झोपड़ी है।

मृणा०—वहाँ और कौन रहता है ?

गिरि०—एक बुढ़िया भर है, उसे मैं आई कहती हूँ।

मृणा०—चलो तुम्हारे घर चलूँगी।

गिरि०—चलो, यही मैं भी सोच रही थी।

इसके बाद दोनो चल दीं। जाते-जाते गिरिजाया ने कहा—लेकिन वह तो झोपड़ी है। वहाँ कितने दिन रह सकोगी ?

मृणा०—कल सबेरे दूसरी जगह चली जाऊँगी।

गिरि०—कहाँ ? मथुरा ?

मृणा०—मथुरा में मेरे लिए स्थान नहीं है।

गिरि०—तो फिर और कहाँ ?

मृणा०—यमराज के घर।

इस बात के बाद दोनो जनी क्षण भर चुपचाप चलती रहीं। इसके बाद मृणालिनी ने कहा—इस बात पर क्या तुम्हें विश्वास होता है ?

गिरि०—विश्वास क्यों न होगा ? किन्तु वह स्थान तो मौजूद ही है। जब जी चाहे तभी जा सकोगी। अभी और एक जगह क्यों न जाओ ?

मृणा०—कहाँ ?

गिरि०—नवद्वीप।

मृणा०—गिरिजाया, तुम भिखारिन के वेष में कोई मायाविनी हो। तुमसे मैं कोई बात नहीं छिपाऊँगी। खासकर तुम मेरा हित चाहने वाली हो इसलिए। मैंने नवद्वीप जाना ही तय किया है।

गिरि०—अकेली जाओगी ?

मृणा०—साथी कहाँ पाऊँगी ?

गिरि०—(गाते-गाते)—

मेघ दरशने हाय, चातकिनी धाय रे।
संगे जावि के के तोरा आय आय आय रे ॥
मेघे ते बिजली हासि, आमि बड़ो भालो बासि,
जे जावि से जावि तोरा, गिरिजाया जाय रे ॥

अर्थात्—मेघ को देखने के लिए हाय; चातकी दौड़ती है। कौन-कौन संग जाओगे, आओ—आओ—आओ रे। मेघ में बिजली की हँसी मुझे बहुत अच्छी लगती है—उसे मैं प्यार करती हूँ। तुम लोगों में से जिसे चलना हो, वह चले—गिरिजाया जाती है रे।

मृणा०—यह क्या दिल्लगी कर रही हो गिरिजाया ?

गिरि०—नहीं। मैं चलूँगी।

मृणा०—सचमुच ?

गिरि०—सचमुच चलूँगी।

मृणा०—क्यों चलोगी ?

गिरि०—मेरे लिए सब जगहें एक-सी हैं। राजधानी में भिक्षा बहुत मिलेगी।

द्वितीय खण्ड

प्रथम परिच्छेद

गौड़ेश्वर

अत्यन्त विस्तृत सभामण्डप में नवद्वीप को जगमगानेवाले राजाधिराज गौड़ेश्वर विराजमान हैं। ऊँची संगमरमर की वेदी पर रत्नजड़ित प्रवाल-मंडित छत्र है। उसके नीचे प्रौढ़ावस्था को पार किये हुए महाराज बैठे हैं। सिर के ऊपर श्वेत चंदोवा तना है, जिसमें सुवर्ण के छोटे-छोटे घुँघरू किनारों पर टँके हैं और विचित्र कारीगरी के बेल-बूटे कढ़े हैं। एक ओर दूसरे आसनों पर हवन की भस्म माथे पर लगाये आनेन्द्र-मूर्ति ब्राह्मणमण्डली सभापण्डित के चारों ओर बैठी है। जिस आसन पर एक दिन महाविद्वान् हलायुध बैठे थे, उस पर अब एक अपरिणामदर्शी खुशामदी ब्राह्मण बैठा है। दूसरी ओर महामात्य धर्माधिकारी के पीछे प्रधान-प्रधान राजकर्मचारी बैठे हैं। महासामन्त, महाकुमारामात्य, प्रमाता, औपरिक, दासापराधिक, चौरोद्धरणिक, शौल्किक, गौल्मिकगण, कावप, प्रान्तपालगण, कोष्ठपालगण, काण्डरिका, तदायुक्तक विनियुक्तक आदि भिन्न-भिन्न विभागों के राजकर्मचारी मौजूद हैं। महाप्रतिहार बार-बार सावधान शब्द का उच्चारण कर सभा की सावधानता की रक्षा कर रहा है। स्तुति करनेवाले चारण, बन्दी जन आदि दोनों ओर कतार बाँधे खड़े हैं। इन सब लोगों से अलग केवल कुशासन के ऊपर हमारे पिरिचित पंडित-प्रवर माधवाचार्य विराजमान हैं।

राजसभा का नित्य का नियमित कार्य समाप्त होने पर सभा विसर्जन का उद्योग होने लगा। तब माधवाचार्य ने राजा को सम्बोधन करके कहा—महाराज! ब्राह्मण की वाचालता को क्षमा कीजिएगा। आप राजनीति-विशारद हैं। भूमण्डल पर इस समय जितने राजा हैं, उन सबकी अपेक्षा

बहुदर्शी हैं। प्रजापालक आप ही जन्मजात राजा हैं। यह आप अच्छी तरह जानते हैं कि शत्रु का दमन करना राजा का प्रधान कर्म है। आप अपने और देश के प्रबल शत्रु के दमन का क्या उपाय कर रहे हैं ?

राजा ने कहा—आप क्या आज्ञा करते हैं गुरुवर ?

राजा की श्रवणशक्ति बुढ़ापे के कारण बहुत क्षीण हो गई थी। माधवाचार्य की बातें उन्होंने अच्छी तरह सुन नहीं पाई थीं।

माधवाचार्य के फिर कुछ कहने की प्रतीक्षा न करके धर्माधिकारी पशुपति पंडित ने कहा—महाराजाधिराज ! माधवाचार्य आपसे यह जानना चाहते हैं कि राजशत्रु के दमन का क्या उपाय किया गया है ? बंगेश्वर के किस शत्रु का अभी तक दमन नहीं हुआ, यह आचार्य ने अभी तक नहीं बताया। वह विशेष रूप से सब बातें कहें।

माधवाचार्य ने तनिक हँसकर अबकी बहुत ऊँचे स्वर में कहा—महाराज ! तुर्क लोगों ने लगभग सारे आर्यावर्त को हथिया लिया है। मगध को जीतकर वे गौड़राज्य (बंगाल) पर आक्रमण की तैयारी कर रहे हैं।

अबकी राजा के कानों में माधवाचार्य का कथन पहुँचा। उन्होंने कहा—तुर्कों की बात आप कह रहे हैं ? तुर्क लोग क्या आ गये हैं ?

माधवाचार्य ने कहा—ईश्वर रक्षा कर रहे हैं। अभी वे लोग यहाँ नहीं आये। किन्तु उनके आने पर आप उन्हें किस तरह रोकेंगे ?

राजा ने कहा—मैं क्या करूँगा—मैं क्या करूँगा ? मेरा यह बूढ़ा शरीर है—मुझसे युद्ध का उद्योग नहीं हो सकता। तुर्क आवें तो आवें।

राजा का ऐसा कथन समाप्त होने पर सभा में बैठे हुए सभी लोग चुप रहे। केवल महासामन्त की म्यान में पड़ी हुई तलवार अकारण ही तनिक झनक उठी। अधिकांश श्रोताओं के चेहरे पर कोई भाव नहीं प्रकट हुआ। माधवाचार्य के नेत्रों से दो बूँद आँसू गिर पड़े।

सभापण्डित दामोदर शास्त्री पहले बोले—आचार्य, आप क्या क्षुब्ध हो उठे हैं ? जैसी राजा की आज्ञा हुई वह शास्त्र के अनुकूल है। शास्त्र में ऋषिवाक्य है कि तुर्क लोग इस देश पर अधिकार करेंगे। शास्त्र में जो

लिखा है वह अवश्य होगा ; उसे रोकने की शक्ति किसमें है ? फिर युद्ध का उद्योग करने का क्या प्रयोजन है ?

माधवाचार्य ने कहा—अच्छा सभापण्डित महाशय, एक बात मैं आपसे पूछता हूँ—आपने यह बात किस शास्त्र में लिखी देखी है ?

दामोदर ने कहा—विष्णुपुराण में है। यथा—

माधवाचार्य ने कहा—यथा रहने दीजिए, विष्णुपुराण की पुस्तक मँगाकर दिखाइए—ऐसा कहाँ लिखा है ?

दामोदर ने कहा—तो मैं क्या इतना भ्रान्त हूँ ? अच्छा, स्मरण करके देखिए, मनुस्मृति में ऐसा लिखा है कि नहीं ?

माधवाचार्य ने कहा—गौड़ेश्वर के सभापण्डित क्या मनुस्मृति में भी पारदर्शी नहीं हैं ? उन्होंने क्या मनुस्मृति भी अच्छी तरह नहीं पढ़ी ?

दामो०—कैसी मुशकिल है ! आपने तो मुझे विह्वल बना दिया। आपके सामने सरस्वती स्वयं विमूढ़ बन जाती हैं—मैं क्या चीज हूँ ? आपके सामने मुझे उस ग्रन्थ का नाम न स्मरण होगा ; किन्तु मैं वह श्लोक कहता हूँ, जिसमें ऐसी उक्ति है—

माध०—गौड़ेश्वर के सभापण्डित एक अनुष्टुप छंद का श्लोक रचकर सुना दें, यह कुछ असंभव नहीं है। किन्तु मैं मुक्तकण्ठ से कहता हूँ कि किसी शास्त्र में किसी जगह तुर्कों द्वारा गौड़देश के विजय की भविष्यवाणी नहीं की गई है।

अबकी पशुपति बोले—आपने क्या सब शास्त्र पढ़े हैं ?

माधवाचार्य ने कहा—आप अगर कर सकें तो मुझे अशास्त्रज्ञ प्रमाणित कीजिए।

सभापण्डित के एक पारिषद ने कहा—मैं प्रमाणित करूँगा। देखिए, आत्मश्लाघा (अपने मुह अपनी बड़ाई) शास्त्र में निषिद्ध कही गई है। जो मनुष्य आत्मश्लाघा करता है, वह यदि पण्डित है तो फिर मूर्ख कौन होगा ?

माधवाचार्य ने कहा—तीन तरह के आदमी मूर्ख माने गये हैं। एक वह जो आत्मरक्षा का यत्न नहीं करता; दूसरा वह जो उस यत्नहीनता का समर्थन

करता है; तीसरा वह जो अपनी बुद्धि के बाहर के विषय में बोलता या सम्मति देता है। ये ही मूर्ख हैं। आपमें मूर्ख के ये तीनों लक्षण हैं।

सभापण्डित का वह पारिषद सिर झुकाकर बैठ गया।

पशुपति ने कहा—यवन के आने पर हम युद्ध करेंगे।

माधवाचार्य ने कहा—साधु! साधु! आपका जैसा यश है वैसा ही आपने प्रस्ताव किया। जगदीश्वर आपको कुशल से रखें। मैं केवल यही तो जानना चाहता हूँ कि अगर युद्ध करने का ही विचार है तो उसके लिए क्या उद्योग हुआ है या हो रहा है?

पशुपति ने कहा—मंत्रणा एकान्त में गुप्त रखकर कहना चाहिए, इस सभा के भीतर वह नहीं प्रकाशित की जा सकती। किन्तु अश्वारोही, पैदल और नाविक सेना इकट्ठी की जा रही है, यह बात आप कुछ दिन इस नगरी में घूमने-फिरने से जान सकेंगे।

माध०—कुछ-कुछ जान लिया है।

पशु०—फिर यह प्रस्ताव क्यों कर रहे हैं?

माध०—प्रस्ताव का तात्पर्य यह है कि एक पुरुष आजकल यहाँ आ गया है। मगध के युवराज हेमचन्द्र के पराक्रम की ख्याति आपने सुनी होगी।

पशु०—विशेष रूप से सुन चुका हूँ। यह भी सुना है कि वह महाशय के शिष्य हैं। पर आप यह बता सकेंगे कि ऐसे वीर पुरुष के बाहुबल से सुरक्षित मगध-राज्य शत्रु के हाथ में कैसे चला गया?

माध०—इसका कारण केवल यही है कि यवनों की चढ़ाई के समय युवराज प्रवास में थे।

पशु०—वह क्या इस समय नवद्वीप में आये हैं?

माध०—हाँ, आये हैं। अपने राज्य का अपहरण करनेवाले यवन इस देश पर चढ़ाई करने आ रहे हैं, यह सुनकर उनसे संग्राम करने और लुटेरों दस्युओं को दण्ड देने के लिए आये हैं। गौड़राज उनसे संधि करके दोनों जने मिलकर शत्रु के विनाश की चेष्टा करें तो इसमें दोनों का मंगल होगा।

पशु०—आज ही उनकी सेवा में राज्य की ओर से सेवक नियुक्त होंगे।

उनके निवास के लिए यथायोग्य भवन दिया जायगा। संधि के संबंध में उचित समय पर परामर्श होगा।

इसके बाद राजा की आज्ञा से सभाविसर्जन हुआ। सब अपने घरों को गये।

द्वितीय परिच्छेद

कुसुम-निर्मिता

उपनगर के प्रान्त में गंगातट पर बना हुआ एक भव्य भवन हेमचन्द्र के निवास के लिये राजा की ओर से राजपुरुषों ने दिया। हेमचन्द्र माधवाचार्य की सलाह से उस सुरम्य अट्टालिका में रहने लगे।

नवद्वीप में जनार्दन नाम के एक वृद्ध ब्राह्मण रहते थे। एक तो उनकी उमर बहुत हो हो चुकी थी, दूसरे वह घोर बहरे हो गये थे, अतएव वह सब प्रकार से असमर्थ और निःसहाय थे। उनकी सहधर्मिणी भी बूढ़ी और अशक्त थीं। कुछ दिन हुआ, इनकी फूस की झोपड़ी प्रबल आँधी-तूफान में नष्ट हो गई थी। तभी से ये आश्रम के अभाव में उसी बड़ी इमारत के एक हिस्से में, राजपुरुषों की अनुमति लेकर रह रहे थे। अब राजपुत्र आकर उस भवन में रहेंगे—यह सुनकर वह ब्राह्मण उस घर को छोड़कर दूसरे किसी आश्रम की खोज में जाने का विचार कर रहे थे।

यह सुनकर हेमचंद्र दुःखित हुए। उन्होंने विचारा कि इस इतने बड़े घर में वह ब्राह्मण परिवार और मैं, दोनों रह सकते हैं। ब्राह्मण क्यों निराश्रय हो। हेमचंद्र ने यह विचारकर भृत्य को आज्ञा दी कि ब्राह्मण को यह घर छोड़ने से रोको।

भृत्य ने जरा हँसकर कहा—प्रभु, यह काम नौकर के द्वारा सम्भव न होगा। ब्राह्मण देवता मेरी बात नहीं सुनेंगे।

ब्राह्मण वास्तव में बहुतों की ही बात नहीं सुनते; क्योंकि सुन ही नहीं पाते। वज्र बहरे हैं।

हेमचंद्र ने समझा, ब्राह्मण अभिमान के कारण नौकर बात नहीं करते। इसलिए वह खुद उनसे बात करने गये। उन्होंने ज ब्राह्मण को पहले प्रणाम किया।

जनार्दन ने आशीर्वाद देकर पूछा—तुम कौन हो ?

हेम०—मैं आपका सेवक हूँ।

जना०—क्या कहा ? तुम्हारा नाम रामसेवक है।

हेमचंद्र ने समझ लिया कि ब्राह्मण बहरे हैं, ऊँचा सुनते हैं। अतएव से कहा—मेरा नाम हेमचंद्र है। मैं ब्राह्मणों का दास हूँ।

जना०—अच्छा-अच्छा। पहले मैं अच्छी तरह सुन नहीं पाया था; तुम्हारा न हनुमानदास है।

हेमचंद्र ने मन में कहा—नाम की बात व्यर्थ है। किसी तरह काम पू होना चाहिए। उन्होंने कहा—नवद्वीप के राजा का यह महल है; उन्हों मुझे रहने के लिए दिया है। मैंने सुना है, मेरे आने से आप यह स्थान छो रहे हैं।

जना०—ना, अभी गंगा-स्नान को नहीं गया। स्नान के लिए जाने उद्योग कर रहा हूँ।

हेम०—(बहुत जोर से) स्नान आप यथासमय करिएगा। इस सम आपसे यह अनुरोध करने आया हूँ कि आप यह घर छोड़कर न जाइए

जना०—घर में आहार न करूँ ? तुम्हारे घर में क्या है ? पिता का श्राद्ध

हेम०—अच्छा, आहार की इच्छा हो तो उसका भी प्रबंध हो जायगा अब जिस तरह आप इस घर में रहते आय हैं, वैसे ही रहिए; जाइए कहीं नहीं।

जना०—भला-भला, ब्राह्मणभोजन कराने पर दक्षिणा तो मिलेगी ही यह तो बताना ही नहीं पड़ेगा। तुम्हारा घर कहाँ है ?

हेमचंद्र हताश होकर लौट रहे थे, इसी समय पीछे से किसी ने उनक वस्त्र पकड़कर खींचा। हेमचन्द्र ने घूमकर देखा। देखकर पहले तो उन् जान पड़ा, सामने एक कुसुमनिर्मिता प्रतिमा खड़ी है। दूसरी बार देखने प उन्होंने देखा—यह प्रतिमा सजीव है। तिबारा देखा, प्रतिमा नहीं है; विधाता

माण-कौशल-सीमा-स्वरूप बालिका है या पूर्ण युवती रमणी है। यह कुछ वय न कर सके कि वह बालिका है या तरुणी।

वीणा-विनिन्दित स्वर में उस सुन्दरी ने कहा—तुम बाबा से क्या कह रहे वह तुम्हारी बात नहीं सुन पा रहे हैं।

हेमचंद्र ने कहा—सुन नहीं पाते, यह तो मैंने जान लिया। तुम कौन हो?

बालिका ने कहा—मैं हूँ मनोरमा।

हेम०—यह तुम्हारे बाबा हैं?

बालिका—हाँ। तुम बाबा से क्या कह रहे थे?

हेम०—सुना है, यह घर छोड़कर जाने की तैयारी कर रहे हैं। वही मैं ो मना करने आया हूँ।

मनो०—इस घर में एक राजपुत्र आकर ठहरे हैं। वह हमें क्यों देंगे?

हेम०—मैं ही वह राजपुत्र हूँ। मैं तुम लोगों से अनुरोध करता हूँ कि तुम रहो।

मनो०—क्यों?

इस 'क्यों' का कोई जवाब नहीं है। हेमचंद्र को कोई उत्तर न सूझा। ने कहा—पूछती हो 'क्यों'? मान लो, अगर तुम्हारा भाई आकर इस में रहता, तो वह क्या तुमको निकाल देता?

मनो०—तुम क्या मेरे भाई हो?

हेम०—आज से मैं तुम्हारा भाई हुआ। अब समझीं?

मनो०—समझी। किन्तु बहन कहकर कभी मुझे बकोगे तो नहीं?

हेमचंद्र मनोरमा के कहने के ढंग से चकित हो उठे। सोचा, यह क्या लौकिक सरल बालिका है? या कोई पागल है? बोले—बकूँगा क्यों?

मनो०—अगर मुझसे कोई कसूर हो?

हेम०—कसूर या दोष देखकर कौन नहीं तिरस्कार करता?

मनोरमा कुण्ठित भाव से खड़ी रही। फिर बोली—मैंने कभी भाई नहीं या। भाई से क्या लज्जा-संकोच करना होता है?

हेम०—नहीं।

मनो०—तो मैं तुम से लज्जा नहीं करूँगी। तुम मुझसे लज्जा करोगे क्या

हेमचन्द्र ने हँसकर कहा—मैं अपनी बात तुम्हारे बाबा को समझा सका। इसका उपाय क्या है ?

मनो०—मैं उनसे कहती हूँ।

इतना कहकर मनोरमा ने जनार्दन के पास जाकर धीमे स्वर में अभिप्राय वृद्ध को समझा दिया। हेमचन्द्र को यह देखकर विस्मय हुआ बालिका ने धीरे से कहकर वही बात वृद्ध को समझा दी और उसने सुन लिया।

ब्राह्मण ने आनन्दित होकर हेमचन्द्र को आशीर्वाद दिया और कह मनोरमा, ब्राह्मणी से जाकर कह दे कि राजपुत्र उसके नाती हुए। वह आशीर्वाद दे।

यों कहकर वृद्ध स्वयं ब्राह्मणी! ब्राह्मणी! कहकर पत्नी को पुकारने ल ब्राह्मणी उस समय घर के दूसरे स्थान में कुछ काम कर रही थी—ब्राह्मण पुकार उन्होंने सुन नहीं पाई। ब्राह्मण ने असन्तुष्ट होकर कहा—ब्राह्म में यही बड़ा दोष है—कानों से कम सुनती है!

तृतीय परिच्छेद

नाव की सवारी मे

हेमचन्द्र तो मकान के उपवन की बारहदरी में ठहरे, और मृणालिनी निर्वासित, परिपीड़ित, असहाय मृणालिनी कहाँ है ?

सन्ध्याकाल के आकाश में लाल रंगवाली मेघमाला सुनहले रंग छोड़कर क्रमशः काली हो गई। रात्रि के दिये अन्धकार के आवरण से गंग का विशाल वक्ष-स्थल अस्पष्ट हो गया। सभामण्डप में परिचारक के हा से जलाई गई दीपमाला की तरह अथवा प्रभात में बाग के भीतर खिले हु फूलों के समान आकाश में नक्षत्रसमूह प्रकट होने लगे। अन्धकारपूर्ण नद के ऊपर रात की हवा कुछ तेज़ी के साथ डोलने लगी। उससे, रमणी

हृदय में नायक के स्पर्श से उत्पन्न कंपन के समान नदी के फेनपुंज से श्वेत फूलों की माला-सी गूँथी जाने लगी। बहुत-से लोगों के कोलाहल की तरह लहरों के उठने और टकराने का शब्द होने लगा। नाविक लोग नावों को किनारे लगाकर रात के विश्राम की व्यवस्था करने लगे। उनमें से एक छोटी डोंगी, और नावों से अलग होकर एक नदी से निकली हुई प्रणाली के मुहाने पर जा लगी। उसके माँझी भोजन आदि की व्यवस्था करने लगे।

उस डोंगी पर केवल दो सवारियाँ थीं। दोनो स्त्रियाँ थीं। पाठकों को बतलाना न होगा कि ये मृणालिनी और गिरिजाया थीं।

गिरिजाया ने मृणालिनी को सम्बोधन करके कहा—आज का दिन बीता।

मृणालिनी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

गिरिजाया ने फिर कहा—कल का दिन बीतेगा—परसों का दिन भी बीतेगा—क्यों, बीतेगा नहीं ?

मृणालिनी फिर भी कुछ नहीं बोली। केवल एक साँस छोड़ी।

गिरिजाया ने फिर कहा—मालकिन, यह क्या है ? दिन-रात चिन्ता करके क्या होगा ? अगर हमारा नदिया को आना न ठीक हुआ हो तो चलो, अब भी लौट चलें।

अब की मृणालिनी ने उत्तर दिया। बोली—कहाँ जाओगी ?

गिरि०—चलो, हृषीकेश शर्मा के घर लौट चलें।

मृणा०—उससे तो यह अच्छा होगा कि इस गंगा के जल में डूब मरूँ।

गिरि०—तो चलो मथुरा चलें।

मृणा०—मैंने तो कह दिया है कि वहाँ मेरे लिए स्थान नहीं है। कुलटा की तरह रात को जिस बाप के घर को छोड़ आई हूँ, उस बाप के घर में कैसे मुह दिखाऊँगी ?

गिरि०—लेकिन तुम तो अपनी इच्छा से नहीं आई हो, किसी बुरे इरादे से भी नहीं आई हो। जाने में हर्ज क्या है ?

मृणा०—इस बात पर कौन विश्वास करेगा ? जिस पिता के घर में मैं आदर की पुतली थी ; उस बाप के घर में घृणा का पात्र होकर ही कैसे रहूँगी ?

गिरिजाया ने अन्धकार में देख नहीं पाया कि मृणालिनी के नेत्रों से आँसू बहने लगे थे। गिरिजाया ने कहा—तो फिर कहाँ जाओगी ?

मृणा०—जहाँ जा रही हूँ।

गिरि०—सो तो सुख की यात्रा है। फिर तुम ऐसी अनमनी क्यों हो ? जिसे देखने की साध है उसे देखने जाने से बढ़कर सुख क्या है ?

मृणा०—नदिया में मेरे साथ हेमचन्द्र की भेंट नहीं होगी।

गिरि०—क्यों ? वह क्या वहाँ नहीं हैं ?

मृणा०—वहीं हैं। किन्तु तुम तो जानती हो कि एक वर्ष तक मुझसे न मिलने का उन्होंने व्रत ले रखा है। मैं क्या उनका वह व्रत तोड़ूँगी ?

गिरिजाया चुप हो रही। मृणालिनी ने फिर कहा—और क्या कहकर ही उनके सामने जाकर खड़ी होऊँगी ? मैं क्या यह कहूँगी कि हृषीकेश के ऊपर नाराज़ होकर चली आई हूँ ? या यह कहूँगी कि हृषीकेश ने मुझे कुलटा कहकर घर से निकाल दिया है ?

गिरिजाया ने क्षणभर चुप रहकर कहा—तो क्या नदिया में तुम्हारे साथ हेमचन्द्र की भेंट न होगी ?

मृणा०—नहीं।

गिरि०—तो फिर जाती क्यों हो ?

मृणा०—वह मुझे देख नहीं पावेंगे। लेकिन मैं उनको देखूँगी। उन्हें देखने ही के लिए जाती हूँ।

गिरिजाया के मुह में हँसी फूट निकली। बोली—तो फिर मैं गीत गाऊँ—

चरण-तले दिनू हे श्याम, परान-रतन।
दिब ना तोमारे नाथ, मिछार यौवन ॥
ए रतन समतूल, इहा तूमि दिबे मूल,
दिवा-निशि मोरे नाथ, दिबे दरशन ॥

अर्थात्—हे श्याम, मैंने तुम्हारे चरणों में हृदय-रत्न अर्पण कर दिया हे नाथ, तुम्हें यह मिथ्या यौवन न दूँगी। इस रत्न के समान मूल्य दिन-रात अपना दर्शन मुझे देना।

फिर उसने कहा—ठकुरानी, तुम तो उन्हें देखकर जीवन धारण करोगी।

मैं तुम्हारी दासी हुई हूँ ; मेरा तो उससे पेट नहीं भरेगा । मैं क्या खाकर जियूँगी ?

मृणा०—मैं दो-एक शिल्पकर्म जानती हूँ—माला गूँथना जानती हूँ, चित्र बनाना जानती हूँ, कपड़े के ऊपर फूल और बेलबूटे काढ़ना जानती हूँ। तुम बाजार में मेरी बनाई चीजें बेच आना ।

गिरि०—और मैं घर-घर घूमकर गीत गाऊँगी । अच्छा, क्या वही "मृणाल अधमे" गाऊँ ?

मृणालिनी ने आधी हँसी और आधी कोप की दृष्टि से गिरिजाया की ओर देखा ।

गिरिजाया ने कहा—इस तरह ताकोगी तो मैं यह गीत गाऊँगी—

साधेर तरणी आमार के दिल तरंगे ।
के आछे कोडारी हेनो, के जाइबे संगे ॥

अर्थात्—मेरी साध की नाव को किसने लहरों में डाल दिया ? उन लहरों से निकालनेवाला कर्णधार (माँझी) कौन है ? कौन साथ जायगा ?

मृणालिनी ने कहा—अगर इतना भय है तो अकेली क्यों आई ?

गिरि०—पहले मैं क्या जानती थी !

इतना कहकर वह फिर गाने लगी—

भासलो तरी सकाल बेला, भाविलाम ए—जल-खेला,
मधुर बहिबे वायु, भेसे जाब रंगे ।
एखन—गगने गरजे घन, बहे खर समीरण,
कूल त्यजि एलाम केनो, मरिते आतंके !

अर्थात्—सबेरे के समय नाव तैर चली, मैंने सोचा कि यह जल-विहार है । मीठी-मीठी हल्की-हल्की हवा चलेगी और मैं मज़े में बहती चली जाऊँगी । अब देखती हूँ, आकाश में बादल गरजते हैं, तेज़ आँधी उठ रही है । मैं कूल को छोड़कर आतंक में मरने के लिए क्यों आई !

मृणालिनी ने कहा—कूल में लौट क्यों नहीं जाती ?

गिरिजाया गाने लगी—

मने करि कूले फिरि, बाहि तरी धीरि-धीरि,
कूले ते केटक-तरु वेष्टित भुजंगे ।

अर्थात्—अब सोचती हूँ कि नाव को धीरे-धीरे खेकर किनारे लौट जाऊँ। मगर किनारे कँटीली झाड़ी हैं जिनमें साँप लिपटे हैं।

मृणालिनी ने कहा—तो फिर डूब क्यों नहीं मरती ?

गिरिजाया ने कहा—मरूँ, इसमें कोई क्षति नहीं, किन्तु—

जाहारे कोडारी करि साजाइया दिनू तरी,
से कभू दिलो ना पद, तरणीर अंगे ॥

—जिसे कर्णधार करके नाव सजा दी, उसने कभी उस नाव के ऊपर पैर नहीं रखा।

मृणालिनी ने कहा—गिरिजाया, यह कौन अप्रेमिक का है गान ?

गिरि०—क्यों ?

मृणा०—मैं होती तो नाव को डुबा देती।

गिरि०—साध करके ?

मृणा०—हाँ, साध करके।

गिरि०—तुमने जल के भीतर रत्न देखा है।

——:※:——

चतुर्थ परिच्छेद

झरोखे पर

हेमचंद्र कुछ दिन बाग की बारहदरी में रहे। जनार्दन शर्मा से रोज भेंट होती थी। किन्तु ब्राह्मण के बज्र बहरे होने के कारण इशारों से बातचीत होती थी। मनोरमा से भी हमेशा सामना होता था। मनोरमा कभी स्वयं अपनी ओर से टोककर बातचीत करती थी और कभी बिना बोले ही सामने से चली जाती थी। वास्तव में मनोरमा की प्रकृति हेमचंद्र को दिन पर दिन अधिकतर विस्मयजनक जान पड़ने लगी। पहले तो यह अनुमान करना सहज

न था कि उसकी अवस्था कितनी है। सहज दृष्टि से तो वह एक बालिका ही प्रतीत होती थी। किन्तु कभी-कभी मनोरमा को अत्यंत गंभीर देखा जाता था। मनोरमा क्या अभी तक क्वाँरी है? हेमचंद्र ने एक दिन बातचीत के सिलसिले में मनोरमा से पूछा—मनोरमा, तुम्हारी ससुराल कहाँ है? मनोरमा ने कहा—कह नहीं सकती। और एक दिन हेमचंद्र ने पूछा था—मनोरमा, तुम कै वर्ष की हो? इसके जवाब में भी मनोरमा ने कहा था—मालूम नहीं।

माधवाचार्य ने हेमचंद्र को राजकीय उपवन में ठहराकर देशपर्यटन के लिए यात्रा की थी। उनका अभिप्राय यह था कि इस समय देश के अधीन राजा लोग जिसमें नवद्वीप में सेनासहित जमा होकर गौड़ेश्वर की सहायता के लिए सन्नद्ध हों, इसके लिए उन्हें प्रेरित और प्रोत्साहित करें। हेमचंद्र नवद्वीप में उनकी प्रतीक्षा करने लगे। लेकिन बिना किसी काम के निकम्मे होकर बैठना उनको खलने लगा। वह खीझ उठे। कभी-कभी उनके मन में आने लगा कि दिग्विजय को घर की रखवाली में छोड़कर, घोड़े पर बैठकर गौड़ को लौट जायँ। किन्तु वहाँ मृणालिनी से मिलने पर उनकी प्रतिज्ञा टूटेगी और अगर मिलना ही नहीं है तो गौड़ की यात्रा से लाभ क्या होगा? यह सब विचार कर हेमचंद्र यद्यपि गौड़ को नहीं गये, तथापि प्रतिदिन हर घड़ी उनके मन में मृणालिनी का ध्यान बना रहता था।

एक दिन प्रदोषकाल में वह सोने के कमरे में पलँग के ऊपर लेटे हुए मृणालिनी के ही बारे में सोच रहे थे। मृणालिनी के बारे में सोचने से भी उनको सुख प्राप्त हो रहा था। खुली हुई खिड़की की राह से हेमचंद्र प्रकृति की शोभा का निरीक्षण कर रहे थे। शरद ऋतु का आरम्भ ही हुआ था। उजियाली रात थी। आकाश दूर-दूर तक नील था। उसमें नक्षत्र जगमगा रहे थे। कहीं-कहीं आकाश पर श्वेत मेघों के खंड तह पर तह जमा थे। खिड़की से पास ही बह रही गंगा की धारा भी नजर आ रही थी। भागीरथी गंगा का पाट खूब चौड़ा था। जल बहुत दूर तक फैला हुआ था। गंगा में उठती हुई लहरें चाँदनी पड़ने से चाँदी-सी चमक उठती थीं। दूर के किनारे पर का दृश्य धुआँ-सा धुधला हो रहा था। वर्षा

का नया पानी पाकर गंगा जैसे उमड़ रही थीं। जल के वेग से उठनेवाली कलकल ध्वनि हेमचन्द्र को वहाँ से सुनाई दे रही थी। खिड़की से मंद पवन भीतर आ रहा था। वह हवा गंगा के जलकणों के स्पर्श से शीतल थी; रात के आ जाने से प्रफुल्ल थी, अर्थात् उसके स्पर्श से तबियत हरी हो रही थी। वह वायु जंगली फूलों को छूकर आने के कारण सुवासित थी। चन्द्रमा की किरणों को रोकनेवाले श्याम उज्ज्वल वृक्ष-पत्रों को हिलाती हुई, नदी तट पर ... हुए कास के फूलों को आन्दोलित करती हुई वह हवा खिड़की के भीतर प्रवेश कर रही थी। हेमचंद्र का मन विशेष प्रसन्न हो रहा था।

अकस्मात् खिड़की पर अँधेरा हो गया—चाँदनी की रात जैसे रुक गई। हेमचन्द्र ने इसी समय खिड़की के पास एक आदमी का सिर देख पाया। खिड़की ज़मीन से कुछ ऊँचे पर थी, इसलिए किसी के हाथ-पैर वगैरह कुछ नहीं देख पाया, केवल मुख ही उन्होंने देखा। उस मुख पर बड़ी-सी दाढ़ी थी, सिर पर भारी पगड़ी। उज्ज्वल चाँदनी में, खिड़की के पास, अपने सामने दाढ़ीवाला उष्णीषधारी मनुष्य-मुंड देखकर हेमचन्द्र पलँग से उछल कर खड़े हुए और अपनी तीक्ष्ण तलवार खींच ली।

तलवार लेकर हेमचन्द्र ने जो घूमकर देखा तो खिड़की पर वह सिर नहीं दिखाई पड़ा।

तलवार हाथ में लिये हेमचन्द्र दरवाजा खोलकर कमरे के बाहर निकल पड़े। खिड़की के आस-पास देखा, कोई न था।

घर के चारो ओर, गंगा के किनारे, वन के बीच हेमचन्द्र ने घूम-फिरकर इधर-उधर उस आदमी को बहुत खोजा; पर कहीं भी कोई भी नहीं देख पड़ा।

हेमचन्द्र कमरे में लौट आये। तब राजपुत्र ने सिर से पैर तक पिता का दिया हुआ योद्धा का वेष धारण किया। अकाल में मेघ के छा जाने से अंधकार द्वारा आच्छन्न गगनमण्डल की तरह उनके मुखमण्डल पर एक काली छाया पड़ गई। वह अकेले ही उस गंभीर रात्रि में अस्त्र-शस्त्र लिये चल दिये। खिड़की पर मनुष्य का सिर देखकर वह जान गये थे कि बंगाल में तुर्क आ गये।

पंचम परिच्छेद

बावली के किनारे

अकाल-जलदोदय-स्वरूप भीममूर्ति राजपुत्र हेमचन्द्र उस तुर्क को ढूँढने के लिये निकले। बाघ जैसे शिकार देखते ही वेग से दौड़ता है, वैसे ही हेमचन्द्र उस तुर्क को देखते ही दौड़े। किन्तु यह कुछ ठीक नहीं था कि कहाँ उसे देख पावेंगे।

हेमचन्द्र ने केवल एक ही तुर्क को देखा था। किन्तु उन्होंने यह निश्चय किया कि या तो तुर्क सेना नगर के पास आकर कहीं छिपी हुई है और नहीं तो यह आदमी उस सेना का जासूस है, जो पहले यहाँ के हाल-चाल जानने आया है। अगर तुर्क-सेना ही आई हो तो उससे अकेले युद्ध करना असंभव है। लेकिन चाहे जो हो, यथार्थ बात क्या है, इसका पता लगाये बिना हेमचन्द्र कभी स्थिर नहीं रह सकते। जिस महत्व के काम के लिये उन्होंने मृणालिनी को कुछ समय के लिये छोड़ दिया है, आज रात को सोकर वह उस कार्य की उपेक्षा नहीं कर सकते। खास कर यवन को मारने में हेमचन्द्र को आन्तरिक आनन्द प्राप्त होता है। पगड़ी समेत मनुष्य का सिर देखने के बाद से उनकी उसे मारने की इच्छा बहुत ही प्रबल हो उठी है, अतएव उनके स्थिर या शान्त होने की संभावना क्या है? हेमचन्द्र तेज़ चाल से बड़ी सड़क की ओर चले।

बाग़ की उस बारहदरी से बड़ी सड़क कुछ दूर थी। जिस राह को तय करके बाग़ से सड़क पर पहुँचा जाता है, उसमें कम ही लोग चलते हैं। वह एक देहात जाने की राह है। हेमचन्द्र उसी राह से चले। इस राह की बगल में एक बहुत बड़ी बावली थी। उसकी सीढ़ियाँ बहुत सुन्दर बनी थीं। बावली के आसपास अनेक मौलसिरी, शाल, अशोक, चम्पा, कदंब, पीपल, बरगद, आम, इमली आदि के वृक्ष थे। वृक्ष कोई बाक़ायदा किसी सिलसिले से लगे हों, यह बात न थी। बहुत-से वृक्षों की शाखाएँ परस्पर ऐसी गुथी हुई थीं कि बावली के किनारे घना अंधकार रहता था। दिन को भी वहाँ अँधेरा रहता था। किंवदंती थी कि उस बावली के पास भूत रहते हैं। यह संस्कार आसपास लोगों के मन में ऐसा दृढ़ हो गया था कि साधारणतः वहाँ कोई जाता नहीं था।

अगर जाना ही पड़ता था तो अकेला कोई नहीं जाता था। रात के समय तो कोई कभी नहीं जाता था।

उस समय पौराणिक धर्म का सर्वत्र एकाधिपत्य था। इसलिए अगर हेमचंद्र भूतयोनि के अस्तित्व के विषय में विश्वास रखते हों तो आश्चर्य या विचित्र क्या है? किन्तु भूत-प्रेत के संबंध में विश्वास रखने पर भी हेमचन्द्र ऐसे आदमी न थे कि उधर जाने में संकोच करें या कायरपन दिखावें। वह वीर पुरुष थे। इसीसे वह निःसंकोच होकर बावली के पास की राह से चले। निःसंकोच अवश्य थे, पर कौतूहल से शून्य नहीं। बावली के आसपास और उसके किनारों पर सतर्क दृष्टि डालते हुए चलने लगे। जहाँ पर बावली की सीढ़ियाँ थीं, उसके पास पहुँचते ही वह सहसा चौंक पड़े। जनश्रुति (अफ़वाह) के ऊपर उनका विश्वास और दृढ़ हो गया। उन्होंने देखा, चाँदनी में सबसे नीचे की सीढ़ी पर जल के भीतर पैर डाले कोई बैठी है। वह सफेद वस्त्र धारण किये है। गौर से उन्होंने देखा। उन्हें वह कोई स्त्री जान पड़ी। उस श्वेतवसना के केश खुले हु थे, क्योंकि उसने चोटी नहीं बाँधी थी। उसके घने केशों से कंध, पीठ, दोनों बाहु, मुखमण्डल और वक्षःस्थल, सब अंग ढके हुए थे। उसे प्रेत समझकर हेमचन्द्र चुपके से चले जा रहे थे। किन्तु उन्होंने सोचा, अगर यह मनुष्य हो? इतनी रात गये कौन इस जगह बैठा है? हो सकता है कि इसने उस तुर्क को इधर आते-जाते देखा हो। इसी संदेह से हेमचन्द्र लौट पड़े।

वह निर्भय भाव से बावली के किनारे पर चढ़कर सीढ़ियों से धीरे-धीरे नीचे उतरने लगे। प्रेतिनी ने उनको जान लिया, फिर भी वहाँ से नहीं हटी। पहले ही की तरह बैठी रही। हेमचन्द्र उसके निकट आये। तब यह उठकर खड़ी हुई। हेमचन्द्र की ओर घूमी। हाथों से मुह को ढके हुए बालों को हटाया। हेमचन्द्र ने उसका मुख देखा। वह प्रेतिनी नहीं थी। लेकिन अगर प्रेतिनी होती तो भी शायद हेमचन्द्र को इससे अधिक विस्मय न होता।

हेमचन्द्र बोले—कौन? मनोरमा? तुम यहाँ? इस समय?

मनोरमा ने कहा—मैं तो यहाँ अक्सर आया करती हूँ। लेकिन तुम यहाँ कैसे आये?

हेम०—मेरा कुछ काम है।

मनो०— इस रात में क्या काम है ?

हेम०—यह पीछे बताऊँगा। पहले तुम बताओ, इस रात के समय तुम यहाँ क्यों आई हो ?

मनो०—तुम्हारा यह वेष क्यों है ? हाथ में शूल है, बगल में तलवार लटक रही है। तलवार में यह क्या चमक रहा है ? क्या हीरा है ? सिर पर यह क्या है ? इसमें भी यह क्या अंगारा-सा जगमगा रहा है ? यह भी क्या हीरा है ? इतने हीरे तुमने कहाँ पाये।

हेम०—मेरे पास थे।

मनो०—इतनी रात को इतने हीरे पहनकर कहाँ जा रहे हो ? चोर छीन न लेंगे ?

हेम०—मुझसे चोर-डाकू छीन न सकेंगे।

मनो०—तो इतनी रात को इतने अलंकारों की जरूरत क्या है ? तुम क्या ब्याह करने जा रहे हो ?

हेम०—तुम्हें क्या जान पड़ता है मनोरमा ?

मनो०—मनुष्य मारने के शस्त्र लेकर कोई ब्याह करने नहीं जाता। तुम युद्ध में जा रहे हो।

हेम०—किसके साथ युद्ध करूँगा ?—तुम यहाँ क्या कर रही थीं, बताओगी नहीं ?

मनो०—स्नान कर रही थी। स्नान करके हवा में बैठकर बाल सुखा रही थी। यह देखो, बाल अब तक भीगे हैं।

यह कहकर मनोरमा ने अपने गीले केश हेमचन्द्र के हाथ में छुआये।

हेम०—रात को स्नान की क्या जरूरत थी ?

मनो०—मेरी देह तप रही थी।

हेम०—तो गंगा में न नहाकर यहाँ क्यों आई ?

मनो०—यहाँ का पानी बड़ा ठंडा है।

हेम०—तुम क्या हमेशा यहाँ आती हो ?

मनो०—हाँ, आती हूँ।

हेम०—मैं तुम्हारा संबंध ठीक कर रहा हूँ। तुम्हारा ब्याह होगा। ब्याह हो जाने पर भी क्या इसी तरह आओगी?

मनो०—पहले ब्याह हो, तब देखा जायगा।

हेमचन्द्र ने हँसकर कहा—तुम्हें लज्जा नहीं है, तुम कलमुँही हो।

मनो०—बकते क्यों हो? तुमने तो कहा था कि कभी बकोगे नहीं।

हेम०—बुरा न मानो। अच्छा बताओ, इधर से तुमने किसी को जाते देखा है?

मनो०—देखा है।

हेम०—उसका पहनावा क्या था?

मनो०—तुर्क की पोशाक थी।

हेमचन्द्र ने अत्यन्त विस्मित होकर कहा—तुमने तुर्क को पहचाना कैसे?

मनो०—मैंने पहले भी तुर्क को देखा है।

हेम०—तुमने कहाँ देखा था?

मनो०—चाहे जहाँ देखा हो, तुम क्या उस तुर्क का पीछा करोगे?

हेम०—करूँगा। वह किस राह से गया है?

मनो०—क्यों पीछा करोगे?

हेम०—उसका वध करूँगा।

मनो०—मनुष्य को मारकर क्या होगा?

हेम०—तुर्क मेरे परम शत्रु हैं।

मनो०—तो एक को मारकर तुम्हें क्या तृप्ति मिलेगी?

हेम०—मैं जितने तुर्क देख पाऊँगा, सब को मारूँगा।

मनो०—मार सकोगे?

हेम०—हाँ, मार सकूँगा।

मनोरमा ने कहा—तो फिर सावधान होकर मेरे साथ आओ।

हेमचन्द्र कुछ आना-कानी करने लगे। यवन-युद्ध में यह बालिका पथ-प्रदर्शक है!

मनोरमा उसके मन का भाव ताड़ गई। बोली—मुझे बालिका समझकर मुझ पर तुम्हें विश्वास नहीं होता?

हेमचंद्र ने मनोरमा को ध्यान से देखा। विस्मित होकर मन में सोचा—मनोरमा क्या मानुषी है !

—॰—

षष्ठ परिच्छेद

पशुपति

गौड़ देश के धर्माधिकारी पशुपति पंडित एक असाधारण व्यक्ति हैं। कहना चाहिए कि वह दूसरे गौड़ेश्वर हैं। राजा वृद्ध हैं। बुढ़ापे के धर्म के अनुसार दूसरों की राय पर चलनेवाले और राजकाज के प्रति यत्न न करने वाले अशक्त हो गये हैं, इसलिए प्रधान अमात्य धर्माधिकारी के हाथ में ही गौड़राज्य का यथार्थ भार उन्होंने सौंप रखा था; जिससे सम्पत्ति अथवा ऐश्वर्य में पशुपति पंडित गौड़ेश्वर लक्ष्मणसेन के समकक्ष हो उठे थे।

पशुपति की अवस्था यही कोई पैंतीस वर्ष की होगी। वह देखने में बहुत सुन्दर और सुगठित शरीर के व्यक्ति थे। उसका कद लम्बा, छाती चौड़ी एवं सब अंग सुपुष्ट थे। रंग तपे सोने का-सा था। माथा बहुत चौड़ा मानसिक शक्ति की प्रचुरता का परिचायक था। नाक लम्बी, नुकीली और ऊँची थी। आँखें छोटी थीं, पर उनमें असाधारण चमक थी। मुख की कान्ति ज्ञान की गहराई प्रकट करती थी और प्रतिदिन कामकाज की चिन्ता करते रहने के कारण उसमें कुछ कठोरता झलकती थी। पर इसमें क्या होता है, राजसभा के बीच उन जैसा सर्वांगसुन्दर पुरुष और कोई भी नहीं था। लोग कहते थे—गौड़ देश में उस समय वैसा पंडित और विचक्षण व्यक्ति भी कोई न था।

पशुपति जाति में ब्राह्मण थे; किन्तु यह किसी को विशेष रूप से मालूम न था कि उनकी जन्मभूमि कहाँ है। सुना जाता था कि उनके पिता शास्त्र-व्यवसायी एक गरीब ब्राह्मण थे।

पशुपति केवल अपनी बुद्धि और विद्या के प्रभाव से गौड़ राज्य के प्रधान अमात्य के पद पर पहुँच गये थे। वह शुरू जवानी में काशी धाम में पिता के पास रहकर शास्त्रों का अध्ययन करते थे, वहाँ केशव नाम के एक बंगाली ब्राह्मण रहते थे। केशव के हेमवती नाम की एक आठ वर्ष की कन्या थी। उसके साथ पशुपति का ब्याह हुआ। किन्तु भाग्यवश विवाह की रात को ही केशव अपनी कन्या को लेकर अदृश्य हो गये। फिर उनका कुछ पता न चला। तभी से पशुपति पत्नी के सहवास से वंचित थे। कारणवश अब तक उन्होंने दूसरा ब्याह नहीं किया। इस समय वह राजमहल के समान एक बड़े भवन में रहते हैं, किन्तु नारी-नयन की ज्योति के अभाव से वह ऊँचा भवन अंधकार-मय है।

आज रात को उसी भवन के एक एकान्त कमरे में पशुपति अकेले दीपक के प्रकाश में बैठे हैं इस कमरे के पीछे ही आम का बागीचा है। आम के बागीचे में जाने के लिए गुप्तद्वार है। अर्द्धरात्रि के समय उसी द्वार पर आकर किसी ने धीरे-धीरे खटखटाया। कमरे के भीतर से पशुपति ने जाकर द्वार खोल दिया। एक आदमी ने भीतर प्रवेश किया। वह मुसलमान था। हेमचंद्र ने उसी को अपने यहाँ खिड़की के सामने देखा था। पशुपति ने उसे अलग आसन पर बैठने के लिए कहकर उससे निशानी देखने को माँगी। उसने उनको निशानी दिखला दी।

पशुपति ने संस्कृत में कहा—समझा, आप पठान-सेनापति के विश्वासपात्र आदमी हैं। अतएव मेरे भी विश्वासपात्र हैं आपका ही नाम महम्मदअली है? अब सेनापति का अभिप्राय प्रकट कीजिए।

यवन ने भी संस्कृत में ही उत्तर दिया, किन्तु उसकी संस्कृत में तीन भाग फारसी और बाकी चौथाई जैसी संस्कृत थी, वैसी संस्कृत का भारतवर्ष में कभी व्यवहार नहीं हुआ। वह संस्कृत महम्मदअली की ही उपज थी। पशुपति ने बड़ी मुशकिल से उसका अर्थ निकाला। पाठकों को वह कष्ट भोगने की आवश्यकता नहीं है। हम उनके सहज में समझ लेने के लिए उस संस्कृत का हिन्दी में अनुवाद किये देते हैं।

यवन ने कहा—खिलजी साहब के मतलब को आप जानते हैं। बिना युद्ध के गौड़ देश (बंगाल) को वह जीतना चाहते हैं। क्या होने से आप यह राज्य उनके हाथ में सौंप देंगे ?

पशुपति ने कहा—मैं यह राज्य उन्हें सौंपूँगा या नहीं, यह अनिश्चित है। अपने देश से द्रोह करना महापाप है। मैं यह काम क्यों करूँ ?

यवन—अच्छी बात है। मैं जाता हूँ। लेकिन यह बताइए, फिर आपने खिलजी साहब के पास अपना दूत क्यों भेजा था ?

पशुपति—उनकी युद्ध की साध कितनी और कहाँ तक है, यह जानने के लिए।

यवन—वह मैं आपको बताये जाता हूँ। युद्ध में ही उन्हें आनन्द मिलता है।

पशुपति—मनुष्य-युद्ध में या पशु-युद्ध में ? हाथियों से लड़ने में कैसा आनन्द है ?

महम्मदअली ने क्रोध के साथ कहा—गौड़ में युद्ध के लिए आने का मतलब पशुओं से ही युद्ध करने आना है। समझ गया, आपने व्यंग्य करने के लिए ही सेनापति को अपना आदमी भेजने को कहला भेजा था। हम युद्ध जानते हैं, व्यंग्य नहीं जानते। जो जानते है, वही करेंगे।

इतना कहकर महम्मदअली जाने लगा।

पशुपति ने कहा—क्षण भर ठहरो। और कुछ सुनते जाओ। मैं यवन के हाथ में यह राज्य सौंपने में असम्मत नहीं हूँ—असमर्थ भी नहीं हूँ। मैं ही गौड़ का राजा हूँ, लक्ष्मण सेन तो नाम-मात्र को राजा है। किन्तु समुचित मूल्य पाये बिना मैं क्यों आप लोगों को राज्य दूँ ?

महम्मद—आप क्या चाहते है ?

पशुपति—खिलजी क्या देंगे ?

महम्मद—आपका जो कुछ है, वह सब बना रहेगा—आपका जीवन, ऐश्वर्य, पद, सभी रहेगा। इतना ही।

पशुपति—तब मैंने पाया क्या ? यह सब तो मेरे पास है। फिर किस लोभ से मैं यह पाप करूँ ?

महम्मद—हमारी सहायता या माफ़क़त न करने से कुछ भी नहीं रहेगा। युद्ध करने से आपका ऐश्वर्य, पद और जीवन तक नहीं रहेगा।

पशुपति—यह तो युद्ध समाप्त हुए बिना नहीं कहा जा सकता। हम बिल्कुल ही युद्ध नहीं करना चाहते, ऐसा न समझिएगा। खासकर मगध में विद्रोह हो रहा है, यह खबर हमको है। उसी को मिटाने के लिए इस समय खिलजी व्यस्त हैं। गौड़ को जीतने की इच्छा फ़िलहाल उन्हें छोड़ देनी होगी, यह भी मुझे मालूम है। मेरा चाहा हुआ पुरस्कार न देना चाहें, न दें, किन्तु युद्ध करना ही अगर तय हो तो हमारे लिए यही उत्तम समय है। जब बिहार में विद्रोही सेना सज्जित होगी तब गौड़ेश्वर की सेना भी सजेगी।

महम्मद—हर्ज क्या है? चींटियों के काटने के ऊपर मच्छड़ भी डंक मारें तो हाथी नहीं मरते। किन्तु आप क्या पुरस्कार चाहते हैं, यह मैं सुन जाना चाहता हूँ।

पशुपति—सुनिए। मैं ही इस समय वास्तव में गौड़ का स्वामी हूँ, लेकिन लोग मुझे गौड़ेश्वर नहीं कहते। मैं अपने नाम से राजा होना चाहता हूँ। सेन-वंश का लोप होकर पशुपति गौड़ का राज हो।

महम्मद—उससे आप हम लोगों का क्या उपकार करेंगे? हमें क्या देंगे?

पशुपति—केवल राज्य का कर। मुसलमान के अधीन मैं कर देनेवाला राजा भर बनूँगा।

महम्मद अच्छी बात है। अगर आप ही असल में गौड़ के राजा हैं, राज्य अगर इस तरह आपकी मुट्ठी में है तो हम लोगों के साथ आपकी बातचीत की क्या जरूरत है? हमारी सहायता का प्रयोजन क्या है? हम लोगों को आप कर क्यों देंगे?

पशुपति—यह मैं स्पष्ट ही कहूँगा, इसमें कुछ छिपाऊँगा नहीं। पहले तो सेन राजा, मेरे मालिक बूढ़े हैं, फिर मुझसे स्नेह रखते हैं। अपने बल से अगर मैं उन्हें राज्य से च्युत करूँ तो लोग मेरी बड़ी निन्दा करेंगे। आप लोग थोड़ा-सा युद्ध का उद्यम दिखाकर, मेरी सहायता से बिना युद्ध के नगर में प्रवेश करके उन्हें सिंहासन से उतारकर मुझे गद्दी पर बिठावेंगे, तो मेरी निन्दा नहीं होगी। दूसरे, जो राज्य का अधिकारी नहीं है उसके अर्थात् मेरे

अधिकार में राज्य के आने से प्रजा में विद्रोह होने की संभावना है। आप लोगों की सहायता से मैं उस विद्रोह को सहज में ही दबा सकूँगा। तीसरे, मेरे स्वयं राजा होने पर इस समय सेन राजा के साथ आप लोगों का जो संबंध है, वही संबंध मेरे साथ भी रहेगा। आप लोगों के साथ युद्ध की संभावना रहने पर युद्ध के लिए भी मैं प्रस्तुत हूँ। किन्तु उसमें जय और पराजय, दोनो की संभावना है। जय होने पर मुझे कुछ नया नहीं मिलेगा; किन्तु पराजय होने पर सर्वस्व की हानि होगी। किन्तु आप लोगों से सन्धि करके राज्य ग्रहण करने पर वह आशंका नहीं रहेगी। खासकर सर्वदा युद्ध के लिए उद्यत रहने पर नये राज्य का सुशासन नहीं हो पाता।

महम्मद—आपने एक राजनीति के पण्डित की तरह ही सोचा-समझा है। आपकी बातों से आप पर मुझे पूरा विश्वास हो गया है। मैं भी उसी तरह स्पष्ट करके खिलजी साहब का इरादा जाहिर करूँगा। वह इस समय बहुत-सी चिन्ताओं में उलझे हुए अवश्य हैं, लेकिन हिन्दोस्तान में मुसलिम राज्य स्थापित करके वह सारे हिन्दोस्तान के एक मात्र स्वामी होंगे; और किसी राजा का यहाँ नाम मात्र न रहने देंगे। जैसे दिल्ली में मोहम्मद गोरी के प्रतिनिधि कुतुबुद्दीन हैं, जैसे पूर्व देश में कुतुबुद्दीन के प्रतिनिधि बख्तियार खिलजी है, वैसे ही गौड़ देश मे आप बख्तियार खिलजी के प्रतिनिधि होंगे। आपको यह मंजूर है या नहीं ?

पशुपति ने कहा—मैं मंजूर करता हूँ।

महम्मद—अच्छा मुझे एक बात और पूछना है। आप जो अंगीकार कर रहे हैं, उसे पूरा करने की आप में कितनी सामर्थ्य है ?

पशुपति—मेरी आज्ञा के बिना एक भी सिपाही युद्ध नहीं करेगा। राज्य का खजाना मेरे ही आदमी के हाथ मे है। मेरी आज्ञा के बिना युद्ध के उपयोग में एक कौड़ी भी खर्च न होगी। खिलजी से पाँच अनुचर लेकर राजपुरी में प्रवेश करने के लिए कहना। कोई पूछेगा भी नहीं कि तुम लोग कौन हो ?

महम्मद—और भी एक बात बाकी है। इस देश में मुसलमानों का

सबसे बड़ा दुश्मन और विरोधी हेमचन्द्र ठहरा हुआ है। आज रात को ही उसका सिर हमारी छावनी में भेजना होगा।

पशुपति—आप ही लोग आकर उसे काटिएगा। मैं शरणागत की हत्या का पाप क्यों लूँगा ?

महम्मद—हम लोगों से यह काम न हो सकेगा। तुर्कों के आने की खबर पाते ही वह आदमी नगर छोड़कर भाग जायगा। आज वह निश्चिन्त है। आज आदमी भेजकर उसे कत्ल करा दीजिए।

पशुपति—अच्छा, यह भी स्वीकार किया।

महम्मद—अब हम सन्तुष्ट हुए। मैं आपका उत्तर लेकर जाता हूँ।

पशुपति—बहुत अच्छा। मुझे भी एक बात और पूछनी है।

महम्मद—क्या ? फ़र्माइए।

पशुपति—मैं तो राज्य आप लोगों के हाथ में सौंप दूँगा। बाद को अगर आप लोग मुझे निकाल बाहर करें—तब ?

महम्मद—हम आपकी बात का भरोसा करके बहुत थोड़े सिपाही लेकर, अपने को खिलजी के दूत बताकर, पुरी में प्रवेश करेंगे। तब अगर हम वादे के मुताबिक काम न करें तो आप सहज ही में हमें निकाल बाहर कर दे सकते हैं।

पशुपति—और अगर आप थोड़ी सेना लेकर न आवें ?

महम्मद—तो युद्ध कीजिएगा।

इतना कहकर महम्मदअली विदा हुआ।

—:※:—

सप्तम परिच्छेद

गुप्तचर

महम्मदअली बाहर निकलकर जब आँखों की ओट हो गया, तब एक आदमी ने उस गुप्तद्वार के पास आकर धीरे-धीरे दबी आवाज़ में कहा—भीतर आऊँ ?

पशुपति ने कहा—आओ।

एक गुप्तचर ने प्रवेश किया। उसका नाम शान्तशील था। उसने प्रणाम किया। पशुपति ने आशीर्वाद देकर पूछा—क्यों शान्तशील! मंगल-संवाद है न?

शान्तशील ने कहा—आप एक-एक करके पूछिए, मैं क्रमशः सब समाचार निवेदन करता हूँ।

पशुपति—यवनों के अड्डे पर गये थे?

शान्त—वहाँ कोई जा नहीं सकता।

पशुपति—क्यों?

शान्त—बहुत घना जंगल है; भीतर घुसना बहुत कठिन है।

पशुपति—कुल्हाड़ी हाथ में लेकर वृक्षों को काटते हुए क्यों नहीं गये?

शान्त—बाघों और भालुओं का बड़ा डर है।

पशुपति—सशस्त्र होकर क्यों नहीं गये?

शान्त—जो सब लकड़हारे बाघों-भालुओं को मारकर वन के भीतर घुसे थे, सब यवनों के हाथ से मारे गये—कोई लौटकर नहीं आया?

पशुपति—न हो, तुम भी न आते।

शान्त—तो यहाँ आकर आपको खबर कौन देता?

पशुपति ने हँसकर कहा—तुम्हीं आते।

शान्तशील ने प्रणाम करके कहा—मैं ही खबर देने आया हूँ।

पशुपति ने प्रसन्न होकर पूछा—कैसे गये?

शान्त—पहले पगड़ी, हथियार और तुर्की पोशाक का प्रबन्ध किया। फिर इन सब चीजों की गठरी बाँधकर पीठ पर रखी। इसके बाद लकड़हारे के साथ वन के भीतर प्रवेश किया। राह में जब यवन सिपाही उन लकड़हारों को देखकर उन्हें मारने में जुट गये, तब मैं धीरे से खिसककर एक वृक्षों के झुरमुट की आड़ में चला गया। वहाँ वेष बदलकर, मुसलमान बनकर यवन-छावनी में सब जगह घूमा-फिरा।

पशुपति—बेशक तुमने प्रशंसा के योग्य काम किया। यवन-सेना भला कितनी होगी?

शान्त——उस भारी जंगल में जितनी आ सकती है। जान पड़ता है, पचीस हजार के लगभग होगी।

पशुपति भौंह सिकोड़कर कुछ देर स्तब्ध हो रहे। फिर बोले—उनकी बातचीत क्या सुनी?

शान्त—बहुत कुछ सुनी—लेकिन उसका कुछ मतलब आपके आगे निवेदन करने में असमर्थ हूँ।

पशुपति—(चौंककर) क्यों?

शान्त—इसलिए कि मैं तुर्कों की भाषा में पंडित नहीं हूँ।

पशुपति हँस पड़े। तब शान्तशील ने कहा—महम्मदअली यहाँ आये थे, इससे मुझे आशंका हो रही है।

शान्त—उनका आना छिपा नहीं रहा—उनके आने को किसी-किसी ने देख लिया है।

पशुपति ने अत्यन्त शंकित होकर कहा—यह तुमने कैसे जाना?

शान्तशील ने कहा—मैंने श्रीचरणों के दर्शनों के लिए आते समय देखा कि वृक्ष के नीचे एक आदमी छिपा हुआ है। उसकी साज-सज्जा और वेश योद्धा का था। उससे बातचीत करने से मालूम हुआ कि उसने महम्मदअली को यहाँ घुसते देख लिया है और उसी के निकलने की वह प्रतीक्षा में है। अँधेरे में उसे मैं पहचान नहीं पाया।

पशुपति—इसके बाद?

शान्त—इसके बाद यह दास उसे चित्रशाला में क़ैद कर आया है।

पशुपति गुप्तचर को साधुवाद देकर कहने लगे—कल सबेरे उठकर उस व्यक्ति का फैसला किया जायगा। आज रात भर वह क़ैद में ही रहे। अब तुमको और काम पूरा करना होगा। यवन-सेनापति की इच्छा है कि आज रात ही को वह मगध के राजपुत्र का कटा हुआ सिर देखें। उसका सिर अभी तुम जाकर काट लाओ।

शान्त—काम बिल्कुल आसान नहीं है। राजपुत्र कोई चींटी या मक्खी नहीं है।

पशुपति—मैं तुमसे अकेले उससे युद्ध करने जाने को नहीं कहता। कुछ आदमियों के साथ जाकर उसके डेरे पर आक्रमण करना होगा।

शान्त—लोग क्या कहेंगे ?

पशुपति—लोग यही कहेंगे कि चोर या डाकू उसकी हत्या कर गये।

शान्त—जो आज्ञा। अभी जाता हूँ।

पशुपति ने शांतशील को पुरस्कार देकर विदा किया। फिर घर के भीतर, जहाँ विचित्र सूक्ष्म कारु-कार्य-खचित मंदिर में अष्टभुजा देवी की मूर्ति स्थापित थी, वहाँ जाकर उन्होंने प्रतिमा के आगे साष्टांग प्रणाम किया। फिर उठकर हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक इष्टदेवी की स्तुति करके बोले—जननी ? विश्व का पालन करनेवाली जगद्धात्री ! मैं तटहीन अपार सागर में फाँद रहा हूँ—देखना मा ! मेरा उद्धार करना—मुझे उबारना। मैं जननी-स्वरूप जन्मभूमि को कभी देवद्वेषी यवन के हाथ नहीं बेचूँगा। केवल यही—इतनी ही मेरी पाप-अभिसन्धि है कि अक्षम, जरठ, जर्जर राजा की जगह मैं राजा बनूँगा। जैसे काँटे से काँटा निकालकर दोनों को फेंक दिया जाता है, वैसे ही यवन की सहायता से राज्य लाभ करके राज्य की सहायता से यवन का विनाश करूँगा—मार भगाऊँगा। इसमें क्या पाप है मा ? अगर इससे पाप भी हो तो जीवन भर प्रजा को सुख पहुँचाकर उस पाप का प्रायश्चित्त मैं कर डालूँगा। जगदम्बिके ! प्रसन्न होकर मेरी मनःकामना पूरी करो।

इतना कहकर पशुपति ने फिर साष्टांग प्रणाम किया। सोने के कक्ष की ओर जाने के लिए घूमे तो देखा, एक अपूर्व झाँकी सामने है। सामने द्वार पर, द्वारदेश के सारे अवकाश को घेरे हुए जीवनमयी प्रतिमास्वरूपिणी तरुणी खड़ी है।

पशुपति पहले तो देखकर चौंके—काँप उठे। किन्तु उसी क्षण तरुणी को पहचानकर उमड़ रहे समुद्र की जलराशि की तरह फूल गये।

तरुणी ने वीणाविनिन्दित स्वर में पुकारा—पशुपति !

पशुपति ने देखा, सामने मनोरमा खड़ी है।

——:※:——

अष्टम परिच्छेद

मोहिनी

उस रत्नदीप से जगमगाते हुए देवीमंदिर में, चाँदनी से चमकते हुए द्वार में, मनोरमा को देखकर पशुपति का हृदय ज्वार के समय उमड़ते हुए समुद्र की तरह स्फीत हो उठा। मनोरमा का डीलडौल बिल्कुल छोटा हो, यह बात न थी, तो भी वह एक बालिका ही जान पड़ती थी और इसका कारण यह था कि उसके मुख की कान्ति अनिर्वचनीय कोमल थी—चेहरे पर बहुत ही भोलापन झलकता था। उसमें अनिर्वचनीय माधुरी थी, जैसी प्रायः छोटी बालिकाओं के मुखमण्डल में होती है। अतएव हेमचन्द्र ने उसकी अवस्था पंद्रह वर्ष की अनुमान की थी, सो कुछ अनुचित न था। मनोरमा की अवस्था असल में पंद्रह वर्ष, या सोलह वर्ष, या उससे अधिक या उससे कम थी, यह इतिहास में लिखा नहीं है, पाठक-पाठिका आप ही उसकी अवस्था ठीक कर लें।

मनोरमा की अवस्था चाहे जितनी हो, उसकी रूपराशि अतुलनीय है, आँखों में समाती नहीं। बाल्यावस्था में, किशोर अवस्था में, जवानी में, सभी अवस्थाओं में वह रूपराशि दुर्लभ है। एक तो रंग चंपा के फूल के समान सुनहला, उसपर नागिन के छोटे बच्चों के समान घुंघराली केशराशि मुखचंद्र को चारो ओर घेरे हुए थी। इस समय बावली के जल में नहाने से वे केश सीधे हो गये थे। ललाट निर्मल अर्द्धचंद्र के आकार का था। भ्रमरों के भार से हिल रहे नील कमल तुल्य काली पुतलियोंवाले चंचल नयन थे। बार-बार स्पन्दन से सिकुड़ते और फैलते हुए नासारंध्रों से युक्त सुगठित सुडौल नासिका थी। कपोल जैसे चंद्रमा की किरणों से उज्ज्वल, सम्पूर्णरूप से स्थिर गंगाजल के विस्तार-सदृश प्रसन्नता-व्यंजक थे। अपने बच्चे की हिंसा की आशंका से उत्तेजित हंसिनी के समान गर्दन थी। वेणी बाँधने पर भी उस गर्दन के ऊपर बिना बँधे छोटे-छोटे सब केश आकर क्रीड़ा करते थे। हाथीदाँत अगर कुसुमसम कोमल होता, अथवा चंपा का फूल अगर गठन

के लिए उपयोगी कड़ा होता, या चंद्रमा की किरणें यदि शरीरधारी होतीं, तो उनसे वे बाहुयुगल गढ़े जा सकते थे—वह हृदय केवल उसी हृदय से गढ़ा जा सकता था—वह सभी और सुन्दरियों के भी है। पर मनोरमा की रूपराशि तुलनारहित है, और यह केवल उसकी सर्वांगीण सुकुमारता के कारण। उसका मुखमण्डल सुकुमार है; अधर, दोनों भौंहें और ललाट सुकुमार है। कपोल सुकुमार हैं, केशराशि सुकुमार है। अलकावली जो भुजंगिनी की शिशुमंडली सदृश है, वे साँपिन के बच्चे भी सुकुमार हैं। गर्दन में गर्दन घुमाने की अदा भी सुकुमार है। बाहुओं में उनका इधर-उधर संचालन सुकुमार है। हृदय के उच्छ्‌वास अथवा श्वास-प्रश्वास-जनित हृदय के स्पन्दन में भी वही सुकुमारता है! चरण सुकुमार हैं, उनका उठाना और रखना सुकुमार है। चाल सुकुमार है। वह चाल वसन्त-पवन से आंदोलित कुसुमित लता के मंद-मंद हिलने के समान है। वचन सुकुमार हैं—अर्धरात्रि के समय जलराशि के पार से आ रहे विरह-संगीत के समान। कटाक्ष सुकुमार हैं—क्षण भर के लिए मेघमाला से मुक्त चंद्रमा की किरणें पड़ने के समान। और यह जो मनोरमा देवी कमरे के द्वार पर खड़ी हैं—पशुपति का मुख देखने के लिए मुख उठाये, जिनके नयन-तारा नयन ऊपर उठाने के कारण स्पंदित हो रहे हैं तथा जो बावली के जल में भीगे खुले हुए केशपाश का कुछ हिस्सा एक हाथ में पकड़े हैं, उनकी इस अदा का तो वर्णन ही नहीं हो सकता। एक पैर को कुछ आगे बढ़ाये जिस अदा से मनोरमा खड़ी है, वह अदा भी सुकुमार है। नवीन सूर्योदय में तुरत खिली हुई पंखड़ियों की माला से मंडित पद्मिनी की प्रसन्न लज्जा के समान मुख का भाव भी सुकुमार और मनोहर है।

इस माधुर्यमय देह के ऊपर वेदी के पास रखे हुए रत्नदीप का प्रकाश आकर पड़ रहा था। पशुपति अतृप्त आँखों से वह छवि निहारने लगे।

——:*:——

नवम परिच्छेद

मोहिता

पशुपति अतृप्त नयनों से देखने लगे। देखते-देखते मनोरमा के सौन्दर्य-सागर की एक अपूर्व महिमा उन्होंने देख पाई। जैसे सूर्य की प्रखर किरणों से हँसती हुई सागर की जलराशि बादल घिर आने से क्रमशः गहरी काली कान्ति को प्राप्त हो जाती है, वैसे ही पशुपति के देखते-देखते मनोरमा का मुखमण्डल गंभीर होने लगा। फिर वह बालिका-सुलभ ऐश्वर्य-व्यंजक भाव नहीं रहा, अपूर्व तेज की अभिव्यक्ति के साथ प्रगल्भ वयस के लिए भी दुर्लभ गंभीर भाव उस मुख पर विराजने लगा। सरलता को ढककर प्रतिभा का उदय हुआ।

पशुपति ने पूछा—मनोरमा, इतनी रात को क्यों आई हो? यह क्या? आज तुम्हारा यह भाव क्यों है?

मनोरमा ने उत्तर दिया—मेरा क्या भाव तुमने देखा?

पशुपति—तुम्हारी दो मूर्तियाँ हैं। एक मूर्ति आनन्दमयी भोली भाली बालिका की भी है। उसी मूर्ति से तुम क्यों नहीं आईं? उस तुम्हारे रूप को देखकर मेरा हृदय शीतल होता है। और तुम्हारी यह मूर्ति गंभीर, तेजस्विनी, प्रतिभामयी, प्रखर बुद्धिशालिनी है—इस मूर्ति को देखकर मैं डर उठता हूँ। तब समझ लेता हूँ कि तुम किसी दृढ़ प्रतिज्ञा में बँधी हुई हो। आज तुम इस मूर्ति से मुझे डराने क्यों आई हो?

मनो०—पशुपति, तुम इतनी रात तक जागकर क्या कर रहे हो?

पशुपति—मैं राजकाज में व्यस्त था। लेकिन तुम—

मनो०—फिर पशुपति, मिथ्या? राजकाज में या अपने काम में?

पशुपति—अपने ही काम में सही। राजकाज में हो या अपने काम में हो, मैं कब व्यस्त नहीं रहता? तुम आज यह क्यों पूछ रही हो?

मनो०—मैंने सब सुन लिया है।

पशुपति—क्या सुना है?

मनो०—यवन के साथ पशुपति की मंत्रणा—साँटगाँठ, शान्तशील के साथ की गई बातचीत—दरवाजे के पास खड़े होकर सब सुनी है।

पशुपति के मुखमण्डल पर जैसे बदली का-सा अंधकार छा गया। उन्होंने देर तक सोचते रहने के बाद कहा—अच्छा ही हुआ। मैं तुमसे सब बातें कहता ही। न हो, तुमने पहले ही सुन लिया। तुम मेरी कौन बात नहीं जानती हो?

मनो०—पशुपति, तुमने मुझे त्याग दिया?

पशुपति—क्यों मनोरमा? तुम्हारे ही लिए तो मैंने यह मंत्रणा की है। इस समय मैं राजा का सेवक या नौकर हूँ, मन माफ़िक काम नहीं कर सकता। इस समय विधवा से ब्याह करने से मुझे समाज से परित्यक्त होना पड़ेगा। किन्तु जब मैं स्वयं राजा होऊँगा, तब कौन मुझे छोड़ सकेगा? बल्लाल सेन ने जैसे कुलीनता की नई पद्धति प्रचलित की थी, मैं भी वैसे ही विधवा-विवाह की नई पद्धति चलाऊँगा।

मनोरमा ने लंबी साँस छोड़कर कहा—पशुपति, वह सब मेरा स्वप्नमात्र है। तुम्हारे राजा होने पर मेरा वह स्वप्न टूट जायगा। मैं कभी तुम्हारी रानी नहीं बनूँगी।

पशुपति—क्यों मनोरमा?

मनो०—पूछते हो, क्यों? तुम जब राज्य का भार ग्रहण करोगे तब क्या मुझे प्यार करोगे? राज्य ही तुम्हारे हृदय में प्रधान स्थान पावेगा। तब मेरे प्रति तुम्हारे मन में अनादर उत्पन्न हो जायगा। तुम अगर मुझे प्यार ही नहीं करोगे, तो मैं क्यों तुम्हारी पत्नी होने के बंधन में पड़ूँगी?

पशुपति—तुम इस खयाल को क्यों अपने मन में जगह देती हो? पहले तुम हो, उसके बाद राज्य। मेरा सदैव यही विचार रहेगा।

मनो०—राजा होकर अगर ऐसा करोगे—राज्य की अपेक्षा अगर रानी को अधिक चाहोगे—तो तुम राज्य नहीं कर सकोगे। तुम्हारे हाथ से राज्य निकल जायगा। स्त्रैण राजा का राज्य नहीं रहता।

पशुपति प्रशंसा की दृष्टि से मनोरमा के मुँह की ओर क्षण भर ताकते

रहे। फिर बोले—जिसके वाम भाग में ऐसी सरस्वती हो, उसके लिए आशंका क्या है ? न हो, तुम जो चाहती हो, वही सही। मैं तुम्हारे लिए राज्य को छोड़ दूँगा।

मनो०—तो फिर ग्रहण क्यों करते हो ? त्याग के लिए ग्रहण का फल क्या है ?

पशुपति—कह तो चुका, तुम्हारे साथ विवाह करने की स्वतंत्रता के लिए राजा बनना चाहता हूँ।

मनो०—यह आशा छोड़ दो। तुम राज्य पाओगे, तो मैं कभी तुम्हारी पत्नी न होऊँगी।

पशुपति—क्यों मनोरमा ? मैंने क्या अपराध किया है ?

मनो०—तुम विश्वासघातक हो। विश्वासघातक की भक्ति कैसे करूँगी ? विश्वासघातक को कैसे प्रेम करूँगी ?

पशुपति—क्यों, मैं विश्वासघातक कैसे हुआ ?

मनो०—अपने प्रतिपालक प्रभु को राजगद्दी से हटाने की कल्पना कर रहे हो; शरणागत राजपुत्र की हत्या करना चाहते हो। यह क्या विश्वासघात का काम नहीं है ? जिसने प्रभु को धोखा दिया, वह स्त्री को क्यों न धोखा देगा ? उससे विश्वासघात क्यों न करेगा ?

पशुपति पहले की तरह ही सिर नीचा किये रहे। उन्हें राज्य की लालसा और मनोरमा को पाने की इच्छा दोनों ही प्रबल थीं। किन्तु राज्य पाने से मनोरमा का प्रेम खोना पड़ेगा मनोरमा का त्याग भी वह नहीं कर सकते। इस उभय-संकट में उनका मन बहुत ही डावाँडोल हो रहा था। किसे छोड़ें, किसे लें। उनकी बुद्धि अस्थिर हो गई। वह बार-बार सोचने लगे—अगर मनोरमा को पाऊँ तो भीख माँगकर पेट पालना अच्छा है, राज्य की कोई आवश्यकता नहीं। उनका मन बार-बार यही कहने लगा। किन्तु वैसे ही फिर सोचने लगे—लेकिन मनोरमा को ग्रहण करने से लोक-निन्दा सहनी पड़ेगी, समाज में कलंक होगा, जाति जाती रहेगी, सबकी घृणा का पात्र बनूँगा। यह किस प्रकार सहूँगा ?

पशुपति चुप रहे। कोई उत्तर न दे सके।

उत्तर न पाकर मनोरमा कहने लगी—सुनो पशुपति, तुमने मेरी बात का जवाब नहीं दिया। मैं जाती हूँ। किन्तु यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि विश्वास-घातक से इस जन्म में मेरी भेंट न होगी।

इतना कहकर मनोरमा जाने के लिए पीछे घूमी। पशुपति रो उठे।

वैसे ही मनोरमा फिर लौट पड़ी। आकर उसने पशुपति का हाथ पकड़ा। पशुपति ने उसके मुख की ओर देखा। देखा, तेज के गर्व से युक्त, सिकुड़ी हुई भौहों से रोष प्रकट करनेवाली वह सरस्वती की मूर्ति अब नहीं है। वह प्रतिमा देवी अन्तर्द्धान हो गई है। कुसुम-सुकुमारी बालिका उनका हाथ पकड़े उनके साथ ही रो रही है।

मनोरमा ने कहा—पशुपति, रोते क्यों हो?

पशुपति ने आँसू पोंछकर कहा—तुम्हारी बात से।

मनो०—क्यों मैंने क्या कहा है?

तुम मुझे त्यागकर जा रही थीं।

मनो०—फिर ऐसा नहीं करूँगी।

पशुपति—तुम मेरी राजरानी बनोगी?

मनो०—बनूँगी।

पशुपति के हृदय में आनन्द का सागर उमड़ पड़ा। दोनों आँखों में आँसू भरे एक दूसरे के मुख की ओर ताकते कुछ देर बैठे रहे। सहसा मनोरमा एक चिड़िया की तरह उठकर तेजी से चली गई।

———:※:———

दशम परिच्छेद

फंदे में

पहले हो कहा जा चुका है कि बावली के किनारे से हेमचंद्र मनोरमा के पीछे पीछे नगर की खोज में आ रहे थे। धर्माधिकारी पशुपति का व

कुछ दूर रह जाने पर मनोरमा ने हेमचन्द्र से कहा—सामने यह भवन देखते हो ?

हेम०—हाँ, देखता हूँ।

मनो०—इसी के भीतर यवन गया है ।

हेम०—क्यों ?

इस प्रश्न का उत्तर न देकर मनोरमा ने कहा—तुम यहीं वृक्ष के पीछे ठहरो। वह यवन इधर ही से जायगा।

हेम०—तुम कहाँ जाओगी ?

मनो०—मैं भी इस घर में जाऊँगी ।

हेमचन्द्र ने वहीं ठहरना स्वीकार किया । मनोरमा के आचरण को देखकर कुछ विस्मित भी हुए । उसकी सलाह के माफ़िक राह के किनारे वृक्ष की आड़ में लुक रहे । मनोरमा गुप्त मार्ग से छिपकर घर के भीतर घुस गई ।

इसी समय गुप्तचर शान्तशील पशुपति के घर आ रहा था। उसने देखा कि एक व्यक्ति वृक्ष की आड़ में जा छिपा है। संदेह के कारण शान्तशील उस वृक्ष के पास गया। वहाँ हेमचन्द्र को देखकर उन्हें चोर समझकर, उसने पूछा—कौन हो तुम ? यहाँ क्या करते हो ?

पर वैसे ही हेमचन्द्र के शरीर पर बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र तथा उनका योद्धा का वेश देखकर उसने कहा—आप कौन हैं ?

हेमचन्द्र ने कहा—मैं कोई भी होऊँ, तुम्हें क्या ?

शान्त—आप यहाँ क्यों खड़े हैं ?

हेम०—मैं यहाँ यवन को खोज रहा हूँ।

शान्तशील ने चौंककर कहा—यहाँ यवन कहाँ है ?

हेम०—इस घर के भीतर गया है ।

शान्तशील ने डरे हुए आदमी की तरह वैसे ही स्वर में कहा—इस घर में क्यों गया है ?

हेम०—सो तो मैं नहीं जानता ।

शान्त—यह घर किसका है ?

हेम०—यह भी मुझे नहीं मालूम।

शान्त—लेकिन आपने यह कैसे जाना कि इस घर में यवन है ?

हेम०—यह सुनकर तुम क्या करोगे ?

शान्त—यह घर मेरा है। अगर इसमें यवन घुसा है तो इसमें सन्देह नहीं किसी बुरे इरादे से गया है। आप योद्धा और यवन से द्वेष रखनेवाले जान पड़ते हैं। अगर जी चाहे तो मेरे साथ आइए—हम दोनों चोर को पकड़ेंगे।

हेमचन्द्र राजी होकर शान्तशील के साथ चले। शान्तशील सामने के फाटक से हेमचन्द्र को भीतर ले गया और एक बड़ी-सी कोठरी के भीतर उन्हें ले जाकर बोला—इस घर के भीतर मेरा सुवर्ण और रत्न आदि सब रखा है। आप यहाँ ठहरकर उसकी चौकसी कीजिए। मैं तबतक उस यवन का पता लगाऊँ कि वह कहाँ पर छिपा हुआ है।

इतना कहकर ही शान्तशील उस कोठरी से बाहर निकल आया—और हेमचन्द्र के कुछ उत्तर देने के पहले ही उसने बाहर से द्वार बंद कर लिया। हेमचन्द्र फंदे में पड़कर बंदी हो गये।

एकादश परिच्छेद

छुटकारा

मनोरमा पशुपति से विदा होकर ही तेजी से चित्रशाला की कोठरी में आई। पशुपति के साथ शान्तशील की जो बातचीत हुई वह भी उसने सब सुन ली थी। इसलिए उसे मालूम था कि इसी कोठरी में हेमचन्द्र क़ैद हैं। आते ही उसने चित्रशाला का द्वार खोल दिया। हेमचन्द्र से कहा—हेमचन्द्र, कोठरी से निकलो।

हेमचन्द्र बाहर निकल आये। मनोरमा उनके साथ-साथ चली।

हेमचन्द्र ने पूछा—मैं यहाँ बन्द क्यों किया गया था ?

मनो०—यह फिर बताऊँगी ।

हेम०—जिस आदमी ने मुझे कैद किया था, वह कौन है ?

मनो०—उसका नाम शान्तशील है ।

हेम०—शान्तशील कौन ?

मनो०—गुप्तचर ।

हेम०—यही क्या उसका घर है ?

मनो०—नहीं ।

हेम०—यह घर किसका है ?

मनो०—फिर बताऊँगी ।

हेम०—वह यवन कहाँ गया ?

मनो०—यवन की छावनी में ।

हेम०—छावनी कहाँ है ?

मनो०—महावन में ।

हेम०—महावन कहाँ है ?

मनो०—इस नगर के उत्तर ओर दूर पर ।

हेमचन्द्र हथेली पर गाल रखकर सोचने लगे ।

मनोरमा ने कहा—सोचते क्या हो ? तुम क्या उनसे युद्ध करोगे ?

हेमचन्द्र—पचीस हजार के साथ अकेले युद्ध क्या संभव है ?

मनो०—तब क्या करोगे ? घर लौट जाओगे ?

हेम०—इस समय घर न जाऊँगा ।

मनो०—कहाँ जाओगे ?

हेम०—महावन में ।

मनो०—युद्ध नहीं करोगे तो महावन क्यों जाओगे ?

हेम०—यवनों को देखने ।

मनो०—जब युद्ध न करोगे तो देखकर क्या होगा ?

हेम०—देखकर यह जान सकूँगा कि किस उपाय से उन्हें मार सकूँगा ।

मनोरमा चौंक उठी। बोली—पच्चीस हजार मनुष्यों को मारोगे? कैसा ग़ज़ब है! छी! छीं!

हेम०—मनोरमा! तुमने यह सब खबर कहाँ पाई?

मनो०—और भी खबर है। आज रात को तुम्हें मारने के लिए तुम्हारे घर में डाकू आवेंगे। आज घर न जाना।

इतना कहकर मनोरमा तेज़ी से भाग गई।

——:※:——

द्वादश परिच्छेद

अतिथि-सत्कार

हेमचन्द्र ने घर लौटकर एक सुन्दर घोड़े को सज्जित किया और उस पर सवार हुए। घोड़े को कोड़ा मारकर महावन की ओर चल दिये। नगर पार हुए; उसके बाद ही वह जंगल शुरू हुआ। जंगल मे भी कुछ दूर जाने पर अकस्मात् कहीं से आकर एक तीर उनके कंधे में लगा—उन्हें पीड़ा मालूम हुई। देखा कंधे मे तीर ड़सा हुआ है। पीछे घोड़े की टाप सुन पड़ी। घूम कर देखा, तीन सवार आ रहे हैं।

हेमचन्द्र अपने घोड़े का मुँह घुमाकर उनके पास आने की राह देखने लगे। घूमते ही उन्होंने देखा, हर एक सवार उन्हें लक्ष्य करके अपनी कमान में तीर चढ़ा रहा है। हेमचन्द्र ने विचित्र कौशल से अपने हाथ का शूल (बर्छी) तानकर एकसाथ तीनो तीरों को रोककर बेकार कर दिया।

वे घुड़सवार फिर एकसाथ तीन बाण मारने को उद्यत हुए। पहले के तीनों तीर व्यर्थ होते-न होते उनके तीर फिर वेग से छूटे। फिर हेमचन्द्र ने उन्हें रोका।

इसी तरह फुर्ती के साथ हेमचन्द्र के ऊपर शत्रु बाण बरसाने लगे। तब हेमचन्द्र विचित्र रत्न-जटित ढाल हाथ में लेकर सहज ही में उन बाणों को

रोकने लगे । दो-एक तीर घोड़े के शरीर में अवश्य आकर लग पाये ; पर वह स्वयं अक्षत-शरीर रहे ।

विस्मित होकर तीनो सवारों ने बाण-वर्षा बन्द कर दी । फिर आपस में कुछ परामर्श करने लगे । इसी अवकाश में हेमचन्द्र ने एक सवार को ताककर बाण चलाया । वह निशाना अचूक था । बाण एक सवार के मस्तक में लगा और वह धरती पर लेट गया ।

फौरन ही अन्य दोनो सवार बर्छा ताने हुए घोड़ों के एंड़ लगाकर हेमचन्द्र की ओर झपटे और जब बर्छे का वार करने लायक निकट स्थान पर पहुँच गये तब उन्होंने बर्छा फेंका । अगर वे हेमचन्द्र को ताककर वार करते तो अपनी विचित्र शिक्षा के कौशल से हेमचन्द्र उससे अपने को बचा भी सकते थे ; किन्तु आक्रमणकारियों ने हेमचन्द्र के घोड़े को लक्ष्य करके बर्छा चलाया था । उतना नीचे हाथ ले जाने में हेमचन्द्र को कुछ विलम्ब हो गया । एक का बर्छा तो उन्होंने व्यर्थ कर दिया, पर दूसरे का वह न रोक सके । बर्छा आकर घोड़े की गर्दन में घुस गया । चोट खाते ही सुन्दर घोड़ा अधमरा होकर धरती पर गिर पड़ा ।

हेमचन्द्र बहुत फुर्तीले और युद्ध-विद्या में निपुण थे । वह फुर्ती के साथ घोड़े के गिरने के पहले ही उसकी पीठ से फाँद पड़े और धरती पर पलक मारते ही खड़े होकर अपने हाथ का बर्छा तानकर यह कहते हुए उसे शत्रु के ऊपर चलाया कि मेरे पिता का दिया हुआ यह बर्छा शत्रु का रक्त पिये बिना कभी नहीं लौटा । उनकी यह बात पूरी होते-न होते बर्छे से बिधकर दूसरा सवार भी धरती पर लोटने लगा ।

यह देखकर तीसरा घुड़सवार अपने घोड़े का मुँह फेरकर वेग से भाग खड़ा हुआ । वह वही शान्तशील था ।

तब शत्रुओं से छुट्टी पाकर हेमचन्द्र ने धीरे-धीरे अपने कंधे से वह तीर निकाला । तीर कुछ अधिक घुस गया था । उसे खींचते ही जोर से रक्त की धारा बह चली । हेमचन्द्र अपने वस्त्र से उसे रोकने की चेष्टा करने लगे, पर उनकी यह चेष्टा निष्फल हुई । क्रमशः अधिक रुधिर निकल जाने के कारण

हेमचन्द्र निर्बल होने लगे। तब उन्होंने समझ लिया कि अब यवन-शिविर में उनके जाने की कोई संभावना नहीं है। घोड़ा मारा गया, शरीर भी रक्त की हानि से कमज़ोर हो रहा है। अतएव अप्रसन्न मन से वह धीरे-धीरे नगर की ओर लौटने लगे।

हेमचन्द्र उस जंगल से निकल आये। उस समय तक उनका शरीर बहुत अशक्त हो गया था—रक्त से सारा शरीर भीग चुका था। चलने की शक्ति क्षीण होती जा रही थी। बड़ी कठिनाई से वह नगर के भीतर पहुँच सके। अब और आगे चलना असंभव हो गया। एक कुटीर के पास एक बरगद के वृक्ष के तले वह बैठ गये। उस समय पौ फट रही थी। रात्रि का जागरण—सारी रात का परिश्रम—रक्त की हानि से दुर्बलता—इन सब कारणों से हेमचन्द्र को चक्कर आने लगा—आँखों के आगे धरती घूमने लगी। वह वृक्ष के तने के सहारे बैठ गये। आँखें मुंद गईं। नींद ने जोर पकड़ा, वह अचेत सो गये। नींद में—स्वप्न में जैसे उन्हें सुन पड़ा—

"कंटके गढ़िल विधि मृणाल आधमे।"

तृतीय खण्ड

प्रथम परिच्छेद

वह तुम्हारे कौन हैं ?

जिस कुटिया के निकट वृक्ष के तले बैठकर हेमचन्द्र सो गये थे, उस कुटिया में एक माँझी रहता था। कुटिया के भीतर तीन कोठरी थीं। एक में माँझी की रसोई बनती थी। दूसरी कोठरी में माँझी की स्त्री बालबच्चों को लेकर सोती थी। तीसरी कोठरी में माँझी की जवान लड़की रत्नमयी तथा और दो औरतें सो रही थीं। वे दोनो औरतें पाठकों की पूर्व परिचित मृणालिनी और गिरिजाया हैं। नवद्वीप में अन्यत्र आश्रय न पाकर वे इसी जगह ठहर गई थीं।

एक-एक करके तीनो औरतें सबेरे जागकर उठीं। पहले रत्नमयी जागी। उसने गिरिजाया को सम्बोधन करके कहा—सहेली !

गिरि०—क्या है सखी ?

रत्न०—तुम कहाँ हो सखी ?

गिरि०—बिछौने पर सखी।

रत्न०—उठो न सखी।

गिरि०—नहीं सखी।

रत्न०—मैं पानी डालूँगी।

गिरि०—पानी क्यों सखी ?

रत्न०—न कैसे छोड़ूँगी सखी ?

गिरि०—छोड़ोगी क्यों सखी ? तुम हो मेरी प्राणों से प्यारी सखी ! तुम-सी और कौन है सखी ? तुम हो पार घाट की रसमयी—तुमसे न कही तो और किससे कही ?

रत्न०—बातों में सखी, तुम हो सदा विजयी । मैं अब चुप हो गई । तुक नहीं मिला पाती भई ?

गिरि०—और भी तुक चाहिए ?

रत्न०—तेरे मुँह में धूल-मिट्टी, भूल गई सिट्टी-पिट्टी । चाहिए न और तुक, बातें गईं चुक । तुक न मिला पाती हूँ—काम करने जाती हूँ ।

इतना कहकर रत्नमयी घर के काम करने गई । मृणालिनी अब तक एक शब्द भी नहीं बोली थी । अब गिरिजाया ने उसे सम्बोधन करके कहा—मालकिन, जाग पड़ीं ?

मृणालिनी—मैं तो जाग रही हूँ । जागती ही रहती हूँ ।

गिरि०—क्या सोच रहीं थीं ?

मृणालिनी—जो हमेशा सोचा करती हूँ ।

तब गिरिजाया ने गम्भीर भाव से कहा—क्या करूँ ? मेरा कुछ दोष नहीं है । मैंने सुना है, वह इसी नगर में हैं, लेकिन अभी तक उनका पता नहीं पा सकी । लेकिन अभी तो हमें यहाँ आये केवल दो ही दिन हुए हैं । मैं जल्दी ही पता लगा लूँगी ।

मृणालिनी—गिरिजाया, इस नगर में उनका पता न पाया तो मुझे जीवन भर इसी माँझी की झोपड़ी में रहना होगा । मेरे लिए तो जाने का ठिकाना नहीं है ।

मृणालिनी ने तकिये में मुँह छिपा लिया । गिरिजाया के भी गालों पर चुपचाप आँसू बहने लगे ।

इसी समय रत्नमयी हड़बड़ाई हुई कोठरी में आकर बोली—सखी ! सखी ! ज़रा देख जाओ । हमारे बरांद के नीचे कौन सो रहा है ? अद्भुत सुन्दर पुरुष है ।

गिरिजाया उठकर कुटीर के द्वार पर देखने गई । मृणालिनी ने भी कुटिया के द्वार तक आकर देखा। दोनो ने देखते ही पहचान लिया ।
सागर एकदम उमड़ पड़ा । मृणालिनी गिरिजाया के लिपट गई ।
गिरिजाया ने गाया—

"कएटके गढ़िल विधि मृणाल अधमे ।"

यही ध्वनि स्वप्न की तरह हेमचन्द्र के कानों में पहुँची थी । मृणालिनी ने गिरिजाया का गला खुलता देखकर कहा—चुप डाइन ! हम दोनो एक दूसरे को देख नहीं सकते—मिल नहीं सकते । देखा, वह जाग रहे हैं । आ, हम इधर आड़ में होकर देखें, वह क्या करते हैं । वह जहाँ उठकर जायँ, वहाँ उनके पीछे-पीछे छिपकर जाना । यह क्या ! उनका शरीर खून से तर क्यों देख पड़ रहा है ? चलो, तो मैं भी साथ चलती हूँ।

हेमचन्द्र की नींद खुल गई थी । प्रातःकाल उपस्थित देखकर वह बर्छे का सहारा लेकर उठ खड़े हुए और धीरे-धीरे डेरे की ओर चले ।

हेमचन्द्र के कुछ दूर जाने पर मृणालिनी और गिरिजाया, दोनो उनके पीछे जाने के लिए घर से निकलीं ।

तब रत्नमयी ने पूछा—मालकिन, वह तुम्हारे कौन हैं ?

मृणालिनी ने कहा—भगवान जानें ।

———:*:———

द्वितीय परिच्छेद

प्रतिज्ञा—पर्वतो वह्निमान

(पहाड़ पर आग है)

विश्राम करके हेमचन्द्र में कुछ शक्ति आ गई थी, रक्त का निकलना भी कुछ कम हो गया था। बर्छे का सहारा लेकर उसे टेकते हुए वह मजे में डेरे को लौट आये ।

डेरे पर आकर उन्होंने देखा, मनोरमा दरवाज़े पर खड़ी है ।

मृणालिनी और गिरिजाया ने आड़ में रहकर मनोरमा को देखा।

मनोरमा चित्रलिखित पुतली-सी द्वार पर खड़ी रही। उसे देखकर मृणालिनी ने अपने मन में सोचा—मेरे स्वामी अगर रूप के वशीभूत हो जायँगे तो फिर मेरी सुख की रात का सवेरा ही हो गया।

गिरिजाया ने सोचा—राजपुत्र अगर रूप पर रीझ गये तो मेरी मालकिन के भाग फूट गये।

हेमचन्द्र ने मनोरमा के पास आकर कहा—मनोरमा, इस तरह खड़ी क्यों हो?

मनोरमा कुछ नहीं बोली। हेमचन्द्र ने फिर पुकारा—मनोरमा!

फिर भी उत्तर न मिला। हेमचन्द्र ने देखा, उसकी दृष्टि आकाश में टिकी हुई है। हेमचन्द्र ने फिर पुकारा—मनोरमा! क्या हुआ?

तब मनोरमा ने धीरे-धीरे आकाश की ओर से दृष्टि घुमाकर हेमचन्द्र के मुख पर टिकाई और कुछ देर तक एकटक उनकी ओर ताकती रही। फिर हेमचन्द्र के रक्त से भीगे कपड़े देखकर मनोरमा ने विस्मित होकर कहा—यह क्या हेमचन्द्र! यह रक्त कैसा है? तुम्हारा मुँह सूखा और चेहरा उतरा हुआ है। तुम क्या घायल हुए हो?

हेमचन्द्र ने उंगली से कंधे का घाव दिखा दिया।

तब मनोरमा हेमचन्द्र का हाथ पकड़कर उन्हें घर के भीतर ले गई। फिर पलग पर उन्हें लिटा दिया। इसके बाद तुरन्त गडुए में पानी लाकर एक-एक करके हेमचन्द्र के कपड़े उतारकर अंगों का रक्त धोकर साफ किया। फिर गायों को लुभानेवाली हरी दूब तोड़कर अपने मुंह से अच्छी तरह चबाकर उसकी टिकिया घाव के ऊपर रखकर उसे जनेऊ के आकार में साफ कपड़े की पट्टी से बाँध दिया। फिर कहा—हेमचन्द्र, और क्या करूं? तुम रात भर जागे हो—सोओगे?

हेमचन्द्र ने कहा—नींद तो बड़ी लगी है। न सोने से बहुत कमजोरी और परेशानी है।

मनोरमा के कार्य और ढंग को देखकर मृणालिनी को बड़ी चिन्ता हुई। उसने गिरिजाया से कहा—यह कौन है गिरिजाया?

गिरि०—नाम तो सुना, मनोरमा है।

मृणा०—यह क्या हेमचन्द्र की मनोरमा (मन को रमानेवाली प्रेयसी) है ?

गिरि०— तुम्हारी समझ में क्या आता है ?

मृणा०—मैं सोचती हूँ कि मनोरमा ही भाग्यशालिनी है। मैं हेमचन्द्र की इस समय सेवा नहीं कर पाई, और उसने की। जिस काम के लिए मेरा अन्तःकरण व्याकुल हो रहा था, वह कार्य मनोरमा ने कर दिया। भगवान् उसे चिरायुष्मती करें। गिरिजाया, अब मैं कुटिया को जाती हूँ। मेरा यहाँ अब और ठहरना उचित नहीं है। तुम इसी मोहल्ले में ठहरो। हेमचन्द्र कैसे रहते हैं, यह खबर लेती आना। मनोरमा चाहे जो हो, हेमचन्द्र मेरे ही हैं—इसमें सन्देह नहीं।

तृतीय परिच्छेद

हेतुधूमात्

(धुआँ दिखाई देता है)

मनोरमा और हेमचन्द्र जब घर के भीतर चले गये, तब ऊपर लिखी बातचीत के बाद मृणालिनी को बिदा करके गिरिजाया बाग की प्रदक्षिणा करने लगी। जहाँ-जहाँ उसने कोई खिड़की खुली देखी, वहीं सावधानी से सिर ऊँचा करके घर के भीतर उसने हेमचन्द्र को सोया हुआ देख पाया। मनोरमा उनके पास पलँग पर ही बैठी थी। गिरिजाया उसी खिड़की के नीचे बैठ गई। पहले दिन, रात्रि के समय, उसी खिड़की पर हेमचद्र ने यवन का सिर देखा था।

खिड़की के नीचे गिरिजाया के बैठने का अभिप्राय यह था कि हेमचन्द्र और मनोरमा में क्या बातचीत होती है, उसे छिपकर वह सुन सके। किन्तु हेमचंद्र तो नींद में डूबे हुए थे, कोई बातचीत नहीं हुई। अकेले चुपचाप उस खिड़की के नीचे बैठे-बैठे गिरिजाया का जी ऊब उठा। बड़ा कष्ट मालूम

हुआ। बोल नहीं सकती, हँस नहीं सकती, व्यंग्य नहीं करने को मिलता। बड़े कष्ट में उस स्त्री की जीभ खुजाने लगी। मन-ही-मन सोचने लगी—वह हरामजादा दिग्विजय कहाँ मर गया? वह मिल जाता तो उसी से उलझकर—कुछ कहकर जी बहलाती। लेकिन दिग्विजय उस समय घर के कामों में, स्वामी के कामों में, लगा हुआ था। उससे भी भेंट न हुई। तभी बात करने के लिए और किसी को न पाकर गिरिजाया मन-ही-मन अपने ही से बातें करने लगी। वह वार्तालाप सुनने के लिये पाठकों के मन में कौतूहल अगर हो तो मैं प्रश्नोत्तर के रूप में उसे यहाँ उपस्थित कर सकता हूँ। सुनिए। गिरिजाया ही प्रश्न करनेवाली और उसका उत्तर देनेवाली, दोनों है।

प्रश्न—अरी, तू कौन बैठी है री?

उत्तर—मैं गिरिजाया हूँ री।

प्रश्न—तू यहाँ क्यों बैठी है?

उत्तर—मृणालिनी के लिये री।

प्रश्न—मृणालिनी तेरी कौन है?

उत्तर—कोई भी नहीं।

प्रश्न—तो उसके लिये तेरे इतना सिर-दर्द क्यों है?

उत्तर—मेरा और काम ही क्या है? घूम-घूमकर क्या करूँगी?

प्रश्न—मृणालिनी के लिये यहाँ क्यों बैठी है?

उत्तर—यहाँ उसका एक पालतू तोता पैरों की जंजीर खोलकर भाग आया है।

प्रश्न—तोते को क्या पकड़ ले जायगी?

उत्तर—जंजीर खोल डाली या काट डाली होगी तो उसे पकड़कर क्या होगा? और पकड़ूँगी ही कैसे?

प्रश्न—तो फिर बैठी क्यों है?

उत्तर—देखूँगी, जंजीर काट डाली है कि नहीं।

प्रश्न—काटी है या नहीं, यह जानकर ही क्या होगा?

उत्तर—इस तोते के लिये मृणालिनी रातों को छिपा-छिपाकर कितना

रोती है—आज न जाने कितना रोवेगी। अगर अच्छी खबर ले जाऊँगी तो उसकी बहुत कुछ रक्षा होगी।

प्रश्न—और अगर जंजीर काट डाली हो?

उत्तर—मृणालिनी से कहूँगी कि तोता हाथ से निकल गया। राधाकृष्ण का नाम सुनना हो तो फिर वन का तोता पकड़ लाओ। पढ़े तोते की आशा छोड़ो। पिंजड़ा खाली न रखना।

प्रश्न—मर भिखारी की लड़की! तू अपने मन की-सी बात कहती है। मृणालिनी अगर नाराज होकर पिंजड़े को तोड़ डाले?

उत्तर—ठीक कहती है तू सखी। यह वह कर सकती है। उससे यह बात नहीं कही जायगी।

प्रश्न—तो फिर यहाँ धूप में बैठकर क्यों जान दे रही है?

उत्तर—सिर में बहुत दर्द हो रहा है, इसी से। यह जो औरत घर के भीतर बैठी है—यह औरत गूँगी जान पड़ती है—नहीं तो अबतक कुछ बात क्यों नहीं करती? औरत का मुह अबतक बंद है? जबान में ताला पड़ा है क्या?

क्षण भर बाद गिरिजाया की मनःकामना पूरी हो गई। हेमचन्द्र जागे। तब मनोरमा ने उनसे पूछा—क्यों, नींद पूरी हो गई तुम्हारी?

हेलचंद्र—खूब सोया।

मनोरमा—अच्छा अब बताओ, किस तरह तुम्हारे चोट लगी?

तब हेमचंद्र ने संक्षेप में रात की घटना आदि से अन्त तक कह सुनाई। सुनकर मनोरमा सोच में पड़ गई।

हेमचंद्र ने कहा—तुम्हें जो पूछना और जानना था वह समाप्त हुआ। अब मेरे प्रश्न का उत्तर दो। कल रात को मेरा तुम साथ छोड़कर जब गई, तब उसके बाद जो कुछ हुआ, वह सब बताओ।

मनोरमा ने धीरे-धीरे अस्पष्ट स्वर में जो कहा, वह गिरिजाया कुछ भी न सुन पाई।

गिरिजाया को जब और कुछ न सुन पड़ा तब वह उठ खड़ी हुई। अब फिर वह अपने मन में प्रश्नों और उनके उत्तरों की माला गूँथने लगी।

प्रश्न—तू क्या समझी ?

उत्तर—कुछ लक्षण-मात्र ।

प्रश्न—कौन-कौन लक्षण ?

गिरिजाया उँगलियों पर गिनने लगी—एक, औरत अद्भुत सुन्दरी है। आग के पास क्या घी टिघलता नहीं ? गाढ़ा ही बना रहता है ? दो, मनोरमा तो जरूर ही हेमचन्द्र को प्यार करती है—इसमें संदेह नहीं; नहीं तो इतना यत्न और सेवा क्यों करती ? तीन, एकसाथ रहना। चार, एक साथ रात को घूमना-फिरना। पाँच, चुपके-चुपके बातें करना।

प्रश्न—मनोरमा प्यार करती है। हेमचन्द्र के बारे में क्या खयाल है ?

उत्तर—हवा के बिना कहीं पानी में लहर उठती है कभी ? मुझे अगर कोई चाहता है तो मैं उसे चाहूँगी—इसमें सन्देह नहीं।

प्रश्न—लेकिन मृणालिनी भी तो हेमचन्द्र को प्यार करती है; तब तो हेमचन्द्र मृणालिनी को प्यार करेंगे ही।

उत्तर—यह ठीक है किन्तु मृणालिनी अनुपस्थित है और मनोरमा सामने मौजूद है।

इतना कहकर गिरिजाया धीरे-धीरे घर के द्वार पर आकर खड़ी हुई और एक गीत गाना शुरू करके आवाज लगाई—कुछ भिक्षा मिल जाय मालिक !

चतुर्थ परिच्छेद

उपनयन—वह्निव्याप्यो धूमवान

(जहाँ धुआँ है, वहाँ आग अवश्य होगी)

[illegible]या गाने लगी—

काहे सई जीवत मरत कि विधान ?
व्रज कि किशोर सई, काँहा गेल भागई,

अर्थात्—जीवन-मरण का विधान क्यों है सखी ? व्रज के किशोर भाग गये सखी ? व्रजवासियों के हृदय भग्न हो गये।

संगीत की ध्वनि हेमचन्द्र के कानों में पहुँची। स्वप्न में सुने हुए शब्द की तरह उसने कानों में प्रवेश किया।

गिरिजाया ने फिर गाया—

ब्रज कि किशोर सई, काँहा गेल भागई,
व्रजवधू टूटायल पराण।

हेमचन्द्र उन्मुख होकर सुनने लगे।

गिरिजाया ने फिर गाया—

मिलि गेई नागरी, भूलि गेई माधव,
रूप-विहीन गोप कुमारी
को जाने पिय सई, रसमय प्रेमिक
हेन बंधु रूप कि भिखारी।

अर्थात्—मिल गई नागरी, भूल गये माधव रूपहीन गोप-कुमारी को। प्रिय सखी, कौन जानता था कि रसमय प्रेमिक ऐसे बंधु रूप के भिखारी हैं।

हेमचंद्र ने कहा—यह क्या !—मनोरमा, यह तो गिरिजाया की आवाज़ है ! मैं जाता हूँ।

यह कहकर एक छलाँग में पलंग से नीचे उतर गये।

गिरिजाया गाने लगी—

आगे नाहि बूझनू, रूप देखि भूलनू,
हृदि बैनू चरण युगल।
यमुना-सलिले सई, अब तनु भाड़ब,
आनो सखि भखिब गरल।

अर्थात्—पहले नहीं समझ पाई, रूप को देख मुग्ध हो गई—अपने को भूल गई। उनके दोनो चरणों को हृदय में धारण किया। अब सखी, मैं यमुना के जल में शरीर त्याग कर दूँगी। विष लाओ, मैं खा लूँ।

हेमचन्द्र गिरिजाया के सामने उपस्थित हुए। व्यस्त स्वर में बोले—

गिरिजाया ! यह क्या गिरिजाया ! तुम यहाँ ? तुम यहाँ कैसे आई ? तुम इस देश में कब आई ?

गिरिजाया ने कहा—मैं यहाँ बहुत दिन से हूँ। इतना कहकर वह फिर गाने लगी—

किबा कानन-बल्लरी, गल बेढ़ि बाँधई,
नवीन तमाले दिब फाँस।

अर्थात्—वन की लता नवीन तमाल को पाशबद्ध करने के लिए उसके गले से लिपट गई है।

हेमचन्द्र ने कहा—तुम इस देश में क्यों आई ?

गिरिजाया ने कहा—भीख माँगना मेरी जीविका है ? राजधानी में अधिक भिक्षा पाऊँगी, इसलिए आई हूँ।—

किबा काननबल्लरी, गल बेढ़ि बाँधई,
नवीन तमाले दिब फाँस।

हेमचन्द्र ने गीत पर कर्णपात न करके कहा—मृणालिनी कैसी है, देख आई हो ?

गिरिजाया गाने लगी—

नहे—श्याम श्याम श्याम, श्याम नाम जपयि,
छार तनु करिब विनाश।

अर्थात्—नहीं, अब श्याम श्याम श्याम, श्याम का नाम जपते-जपते इस मिट्टी के शरीर को नष्ट कर दूँगी।

हेमचन्द्र ने खीझकर कहा—अपना यह गीत रहने दो ! मेरी बात का जवाब दो। मृणालिनी कैसी है, देख आई हो ?

गिरिजाया ने कहा—मृणालिनी को मैं नहीं देख आई। यह गीत आपको अच्छा न लगे तो और गीत गाती हूँ—

ए जनमेर संगे कि सई, जनमेर साध फुराइबे ?
किंबा जन्मजन्मान्तरे ए साध मोर पुराइबे।

अर्थात्—इस जन्म के साथ ही क्या सखी, यह मेरी साध समाप्त हो जायगी ? अथवा जन्म-जन्मान्तर में यह मेरी साध पूरी होगी ?

हेमचन्द्र ने कहा--गिरिजाया, मैं तुमसे विनती करता हूँ, गाना बंद करो। मृणालिनी की खबर बताओ। बोलो—

गिरि०—क्या बोलूँ ?

हेम०—मृणालिनी को कैसी—किस दशा में देख आई हो ?

गिरि०—गौड़ नगर में वह नहीं है।

हेम०—क्यों ? कहाँ गई ?

गिरि०—मथुरा में।

हेम०—मथुरा में ? मथुरा में किसके साथ गई ? किस तरह गई ? क्यों गई ?

गिरि०—उनके पिता को किसी तरह पता मिल गया और उन्होंने अपना आदमी भेजकर उन्हें बुला लिया। जान पड़ता है, उनका व्याह होनेवाला है। शायद व्याह करने के लिए ही ले गये हैं।

हेम०—क्या कहा ? क्या करने के लिए ?

गिरि०—मृणालिनी का व्याह करने के लिए उनके पिता उनको ले गये हैं।

हेमचन्द्र ने उसकी ओर से मुँह फेर लिया। गिरिजाया उनके मुख का वह भाव देख नहीं पाई। और यह भी नहीं देख पाई कि उनके कंधे का वह घाव फट जाने से रक्त निकलने लगा है और उस रक्त से उनका वस्त्र भीग गया है। उसने पहले की तरह ही गाना शुरू किया—

विधि, तोरे साधि शुन, जन्म यदि दिवे पुन,
आमारे आवार येन, रमणी जनम दिवे।
लाज-भय तेयागिव, ए साध मोर पूराइव,
सागर छेंचे रतन निव, कंठे रखव निशि-दिवे।

अर्थात्—सुनो विधाता, मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि अगर तुम मुझे फिर जन्म दोगे तो मुझे स्त्री का ही जन्म देना। मैं लोक-लज्जा और बदनामी का डर छोड़ दूँगी। सागर को मथकर रत्न निकालूँगी और उसे दिन-रात गले में पहने रहूँगी।

हेमचन्द्र ने मुँह घुमा लिया। बोले—गिरिजाया, तुम्हारी खबर शुभ है। अच्छा हुआ।

इतना कहकर हेमचन्द्र फिर घर के भीतर चले गये। गिरिजाया के सिर पर आकाश फट पड़ा। गिरिजाया ने समझा था कि झूठ बोलकर, मृणालिनी के व्याह की बात कहकर, वह हेमचन्द्र की परीक्षा लेगी। सोचा था, मृणालिनी का व्याह होनेवाला है, यह सुनकर हेमचन्द्र बहुत कातर होंगे, बड़ा क्रोध करेंगे। कहाँ वह तो कुछ नहीं हुआ।

तब गिरिजाया ने कपाल में हाथ दे मारकर सोचा—हाय! मैंने यह क्या किया? देखती हूँ, इस खबर से तो हेमचन्द्र सुखी हुए; कह गये कि संवाद शुभ है। अब मालकिन की क्या दशा होगी?

हेमचन्द्र ने गिरिजाया से यह क्यों कहा कि संवाद शुभ है, इसे वह क्या समझ पाती? लाख हो, भिखारिन ही तो ठहरी। जिस क्रोध के आवेश में मृणालिनी के लिए हेमचन्द्र अपने गुरुदेव को बाण से मारने के लिए उद्यत हो गये थे, वही दुर्जय क्रोध इस समय हेमचन्द्र के मन में उदय हुआ। अभिमान (रूठने) की अधिकता से दुर्दमनीय क्रोध के आवेग से हेमचन्द्र गिरिजाया से कह उठे थे कि तुम्हारी खबर अच्छी है।

लेकिन गिरिजाया इस बात को समझ नहीं पाई। उसने समझा, यह झूठा लक्षण है हेमचन्द्र के मनोरमा पर अनुरक्त होने का। किसी ने उसे भीख नहीं दी, उसने भीख मिलने की राह नहीं देखी। तोता जंजीर काट गया—यह निश्चय करके वह कुटिया की ओर चल दी।

पंचम परिच्छेद

और एक खबर

उसी दिन माधवाचार्य अपना भ्रमण समाप्त करके नवद्वीप में उपस्थित हुए। उनका इरादा था कि वहाँ प्रिय शिष्य हेमचन्द्र को दर्शन-दान से कृतार्थ करेंगे। आशीर्वाद, आलिंगन, कुशल-प्रश्न आदि के बाद दोनों जने अपने उद्देश्य को पूरा करने के विषय में वार्तालाप करने लगे।

अपने भ्रमण का वृत्तान्त विस्तार से वर्णन करने के बाद माधवाचार्य ने कहा—इतना परिश्रम करके कुछ-कुछ सफलता मुझे मिली है। इस देश में इस राज्य के अधीन सामन्त राजाओं में से अनेक ने सेनराजा की सहायता करना स्वीकार किया है। शीघ्र ही सब आकर नवद्वीप में इकट्ठे होंगे।

हेमचन्द्र ने कहा—वे अभी इस जगह न आवेंगे तो सारा प्रयत्न विफल होगा। यवन सेना आ गई है, महावन में ठहरी हुई है। आज ही कल में वह नगर पर आक्रमण करेगी।

माधवाचार्य सुनकर सिहर उठे। बोले—गौड़ेश्वर की तरफ से उनसे लड़ने की क्या तैयारी हुई है ?

हेम०—कुछ भी नहीं। जान पड़ता है, राजा के पास तक अभी यह खबर पहुँची नहीं है। मैं दैवसंयोग से यह खबर पा गया हूँ।

माधवा०—यह मामला राजा के कानों तक पहुँचाकर तुमने उनको सत्परामर्श क्यों नहीं दिया ?

हेम०—खबर मिलने के बाद ही रास्ते में एक दस्यु ने मुझे अचानक घायल कर दिया था और मैं अचेत होकर मार्ग में पड़ा रहा। अभी-अभी घर लौटकर आया था और विश्राम कर रहा था। निर्बल हो पड़ने के कारण मैं तत्काल ही राजा के सामने नहीं जा सका। अब अभी जाता हूँ।

माधवाचार्य यह कहकर उठ खड़े हुए कि तुम इस समय विश्राम करो, मैं स्वयं राजा के पास जाता हूँ। पीछे जो होगा, तुमको बतलाऊँगा।

तब हेमचन्द्र ने कहा—प्रभो ! सुना है, आप गौड़ तक गये थे—

माधवाचार्य ने हेमचन्द्र का अभिप्राय समझ लिया। बोले— गया था। तुम मृणालिनी की खबर जानने की इच्छा से यह पूछ रहे हो। किन्तु मृणालिनी वहाँ नहीं है।

हेम०— कहाँ गई ?

माधवा०—यह मुझे नहीं मालूम। कोई इसकी खबर नहीं दे सका।

हेम०—वह क्यों वहाँ से गई ?

माधवा०—वत्स ! यह सब हाल युद्ध के अन्त में बताऊँगा।

हेमचन्द्र ने भौंह सिकोड़कर कहा—वह हाल बताने से मैं मर्मपीड़ा से

कातर या विकल हो जाऊँगा, यह आशंका न कीजिए। मैंने भी उसका कुछ अंश सुना है। आपको जो मालूम हुआ है, वह विना संकोच के मेरे आगे प्रकट कर दिजिए।

माधवाचार्य जब गौड़नगर में गये थे, तब हृषीकेश ने अपनी जानकारी के अनुसार मृणालिनी का वृत्तान्त उनको बतलाया था। माधवाचार्य ने भी उसी को सत्य समझ लिया था। माधवाचार्य कभी स्त्री-जाति के ऊपर अनुरक्त नहीं रहे; अतएव स्त्री के चरित्र को नहीं समझते थे। इस समय हेमचन्द्र की बात सुनकर उन्हें जान पड़ा कि हेमचन्द्र ने वही हाल कुछ-कुछ सुनकर मृणालिनी की कामना त्याग कर दी है। अतएव किसी नई मानसिक पीड़ा की संभावना नहीं है—यह समझकर वह फिर अपने आसन पर बैठ गये और हृषीकेश का बताया हुआ विवरण हेमचन्द्र को सुनाने लगे।

हेमचन्द्र सिर झुकाये हथेली पर भ्रुकुटी-कुटिल मस्तक रखे हुए चुपचाप सारा वृत्तान्त सुनते रहे। माधवाचार्य का वक्तव्य समाप्त होने पर भी वह कुछ नहीं बोले। उसी अवस्था में बैठे रहे। माधवाचार्य ने पुकारा—हेमचन्द्र! परन्तु उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला। फिर पुकारा—हेमचन्द्र!

हेमचन्द्र ने फिर उत्तर नहीं दिया।

तब माधवाचार्य ने उठकर हेमचन्द्र का हाथ पकड़ कर अति कोमल स्नेहमय स्वर में कहा—वत्स! तात! सिर उठाओ, मुझसे बात करो।

हेमचन्द्र ने सिर उठाया। उनका मुख देखकर माधवाचार्य को भी भय मालूम हुआ। माधवाचार्य ने कहा—मुझसे बातचीत करो। क्रोध अगर आया हो तो उसे प्रकट करो।

हेमचन्द्र ने कहा—किसकी बात पर विश्वास करूँ? हृषीकेश ने कुछ कहा है और भिखारिन ने और ही कुछ बताया है।

माधवाचार्य ने कहा—भिखारिन कौन? उसने क्या कहा है?

हेमचन्द्र ने अत्यन्त संक्षेप में प्रश्न का उत्तर दिया।

माधवाचार्य ने संकोच के स्वर में—दबी आवाज में—कहा कि हृषीकेश की ही बात झूठ जान पड़ती है।

हेमचन्द्र ने कहा— हृषीकेश ने प्रत्यक्ष जो देखा है।

वह उठकर खड़े हो गये ! पिता का दिया हुआ वही शूल या बर्छा हाथ में लिया। काँपते हुए कलेवर से कमरे के भीतर चुपचाप टहलने लगे।

आचार्य ने पूछा—क्या सोच रहे हो?

हेमचन्द्र ने अपने हाथ का शूल दिखाकर कहा—मृणालिनी को इसी शूल से छेदूँगा।

माधवाचार्य उनके मुख का भाव देखकर डरकर चल दिये।

सबेरे मृणालिनी कह गई थी कि हेमचन्द्र मेरे ही हैं।

——:※:——

षष्ठ परिच्छेद

मैं तो पागल हूँ

तीसरे पहर माधवाचार्य लौटे। उन्होंने खबर लगाकर जाना कि धर्माधिकारी (पशुपति) ने प्रकट किया है कि यवन-सेना आई अवश्य है; किन्तु पहले जीते हुए राज्य में विद्रोह की संभावना सुनकर यवन-सेनापति ने यहाँ संधि करने की इच्छा प्रकट की है। कल वे अपने दूत भेजेंगे। दूत के आने की अपेक्षा करके नगर में कोई युद्ध की तैयारी नहीं हो रही है। यह खबर हेमचन्द्र को सुनाकर माधवाचार्य ने कहा—यह कुलांगार राजा धर्माधिकारी की बुद्धि से नष्ट होगा।

उनकी यह बात हेमचन्द्र के कानों में पहुँची भी या नहीं, इसमें सन्देह है। उनको अनमना देखकर माधवाचार्य बिदा हो गये।

संध्या के पहले मनोरमा ने हेमचन्द्र के कमरे में प्रवेश किया। हेमचन्द्र को देखकर मनोरमा ने कहा—भैया, आज तुम ऐसे क्यों हो?

हेम०—कैसा हूँ?

मनो०—तुम्हारा मुख सावन के आकाश की तरह अंधकार-पूर्ण है। भादों की गंगा की तरह क्रोध से भरी भौंहें क्यों टेढ़ी कर रहे हो? आँखों की पलकें क्यों नहीं पड़तीं? और देखती हूँ—ठीक तो है—आँखों में आँसू भरे हैं, तुम रोते हो?

हेमचन्द्र ने मनोरमा के मुख की ओर एक बार देखा, फिर आँखें झुका लीं।

फिर नज़र उठाकर मनोरमा का मुँह एकटक ताकने लगे। मनोरमा ने समझ लिया कि दृष्टि के इस तरह उठने-गिरने का कोई उद्देश्य नहीं है। दृष्टि तभी ऐसी होती है, जब बात गले तक आती है, पर कही नहीं जा सकती या कहने की नहीं होती।

मनोरमा ने कहा—हेमचन्द्र ! तुम क्यों व्याकुल हो ? क्या हुआ ?

हेमचन्द्र ने कहा—कुछ नहीं।

मनोरमा ने पहले कुछ नहीं कहा। फिर जैसे आप ही अपने से धीरे-धीरे कहने लगी—कुछ नहीं—कहोगे नहीं ! छी ! छी ! छाती के भीतर बिच्छू पालोगे ?

कहते-कहते मनोरमा की आँखों से आँसू की एक बूँद गिर पड़ी। फिर अकस्मात् हेमचन्द्र के मुख की ओर ताककर उसने कहा—मुझसे क्यों न कहोगे ? मैं तो तुम्हारी बहन हूँ भाई !

मनोरमा के मुख के भाव और शान्त दृष्टि में इतना स्नेह, अपनापन, सहृदयता और कोमलता प्रकट हुई कि हेमचन्द्र का अन्तःकरण द्रवित हो गया। उन्होंने कहा—मेरी जो यंत्रणा है, वह बहन से कहने लायक नहीं है।

मनोरमा ने कहा—तो फिर मैं बहन नहीं हूँ।

हेमचंद्र ने किसी तरह उत्तर नहीं दिया। तथापि उत्तर की प्रत्याशा से मनोरमा उनका मुंह ताकती रही। फिर उत्तर न पाकर बोली—मैं तुम्हारी कोई नहीं हूँ।

हेमचन्द्र ने कहा—मेरा दुख बहन को सुनाने योग्य नहीं है। दूसरे किसी को भी सुनाया नहीं जा सकता।

हेमचन्द्र का कंठस्वर करुण और नितान्त अभिव्यक्ति-पूर्ण था। उस स्वर ने मनोरमा के हृदय के भीतर चोट पहुँचाई। पर वैसे ही वह बदल गया, आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। होंठ चबाकर हेमचन्द्र ने कहा—मुझे दुःख क्या है ? दुःख कुछ नहीं है। मैंने मणि के धोखे काले साँप को कंठ में धारण किया था; अब उसे फेंक दिया।

मनोरमा फिर पहले की तरह हेमचन्द्र की ओर एकटक ताकती रही। क्रमशः उसके मुख में अति मधुर, अति करुणाव्यंजक हँसी प्रकट हुई। बालिका

प्रगल्भता को प्राप्त हो गई। सूर्य की किरणों की अपेक्षा जो किरणें समुज्ज्वल हैं, उनका किरीट पहनकर प्रतिभा देवी दिखाई दीं। मनोरमा ने कहा--समझी, तुम बिना समझे किसी को प्यार करते हो, उसी का यह परिणाम हुआ है।

हेमचन्द्र ने कहा—प्यार करता था—

हेमचंद्र ने वर्तमान की जगह भूतकाल का व्यवहार किया। वैसे ही चुपचाप निकले हुए आँसुओं से उनका मुखमंडल भीग गया। आगे वह कुछ नहीं बोल सके।

मनोरमा खीझ उठी। बोली—छी! छी! जो दूसरे को छलता है, वह केवल वंचक है पर जो अपने को धोखा देता है, उसका सर्वनाश होता है।

मनोरमा खीझ के मारे अपनी अलकों को चं। की कली-जैसी उँगलियों में लपेटकर खींचने लगी।

हेमचन्द्र विस्मित हुए। बोले—मैंने क्या अपने को धोखा दिया?

मनोरमा ने कहा—'प्यार करता था' क्या? तुम अब भी प्यार करते हो। नहीं तो रोने क्यों लगे? क्या आज तुम्हारे स्नेहपात्र ने अपराध किया है, इसलिए तुम्हारा प्यार चला गया है? किसने तुम्हें यह बतलाया है?

कहते-कहते मनोरमा के मुख की वह प्रौढ़ भाव की चमक सहसा खिल रहे कमल-पुष्प की तरह और अधिक भाव-व्यंजक होने लगी, आँखों की चमक और भी अधिक प्रखर होने लगी, कंठस्वर अधिकतर परिस्फुट होकर आग्रह से काँपने लगा। वह कहने लगी—यह केवल वीर होने का दंभ करनेवाले पुरुषों का दर्पमात्र है। अहंकार करके कहीं आग बुझाई जाती है? तुम बालू के बाँध से दोनों किनारों को बोरकर बहनेवाली बढ़ी हुई गंगा के वेग को रोक सकोगे, तथापि प्रणयिनी को पापिष्ठा-समझकर कभी प्रेम के वेग को नहीं रोक सकोगे। हाय भगवन्! मनुष्य क्या सभी धोखा देनेवाले हैं?

हेमचन्द्र ने विस्मित होकर सोचा—मैंने इसे एक दिन बालिका समझा था!

मनोरमा कहने लगी—तुमने पुराण सुना है? मैंने पण्डित के मुख से पुराण, गूढ़ अर्थ के साथ, सुना है। उसमें लिखा है—भगीरथ राजा गंगा को पृथ्वी पर लाये थे, तब घमंडी हाथी गंगा का वेग रोकने सामने खड़ा

होकर उस प्रवाह में बह गया था। इसका अर्थ क्या है? गंगा प्रेम-प्रवाह स्वरूपिणी हैं। यही प्रेम-गंगा जगदीश्वर के चरण-कमल से निकली हैं। यह जगत् में पतित-पावनी—ऊँचनीच, पुण्यात्मा-पापी, सभी को पवित्र करने वाली है। जो इसमें गोता लगाता है, वही पुण्यमय हो जाता है। यहाँ मृत्युञ्जय की जटायें विहार करती हैं। जो आदमी मृत्यु को जीत सकता है, या जीत लेता है, वही प्रेम को मस्तक पर धारण करता है। मैंने जैसा सुना है, ठीक वैसा ही कह रही हूँ। दांभिक हाथी दंभ का अवतार है। वह प्रणय के वेग में बह जाता है। प्रेम पहले एक मात्र मार्ग पकड़ता है और फिर उपयुक्त समय में शतमुख हो जाता है। प्रणय स्वभावसिद्ध होने पर सैकड़ों पात्रों में पहुँच जाता है—अन्त को गंगा की तरह सागर-संगम में, ईश्वर में, लय को प्राप्त होता है—संसार के सब जीवों में, जोकि ईश्वर का ही रूप हैं, विलीन होता है।

हेम०—तुम्हें उपदेश देनेवाले ने क्या कहा है कि प्रेम के लिए पात्र या अपात्र का विचार नहीं है? पापी को भी क्या प्रेम करना होगा?

मनो०—हाँ, पापी को भी प्रेम करना होगा। प्रेम के लिए पात्र-अपात्र का भेद नहीं है। सभी को प्यार करो। प्रेम उत्पन्न होने पर उसे यत्न से स्थान दो, क्योंकि प्रेम अमूल्य है। भैया, जो भला है, उसे कौन नहीं प्यार करता? जो बुरा है, उसे जो अपने को भूलकर प्यार करता है, उसे मैं बहुत प्यार करती हूँ। लेकिन मैं तो पागल हूँ।

हेमचन्द्र ने विस्मित होकर कहा—मनोरमा, यह सब तुमको किसने सिखाया? तुम्हारा उपदेशक सचमुच एक अलौकिक व्यक्ति है।

मनोरमा ने मुह नीचा करके कहा—वह सर्वज्ञ है; किन्तु—

हेम०—किन्तु क्या?

मनो०—वह अग्निस्वरूप हैं। प्रकाश करते हैं, लेकिन जलाते भी हैं।

मनोरमा क्षण भर सिर झुकाये रहकर चुप रही।

हेमचन्द्र ने कहा—मनोरमा! तुम्हारा मुख देखकर और तुम्हारी बातें सुनकर मुझे जान पड़ता है, तुम भी किसी से प्रेम रखती हो। जान पड़ता है, तुमने जिनकी तुलना अग्नि से की, वही तुम्हारे प्रणय के अधिकारी हैं।

मनोरमा पहले ही की तरह मौन रही । हेमचन्द्र फिर कहने लगे—अगर यह सत्य हो तो मेरी एक बात सुनो । स्त्री-जाति के लिए सतीत्व से बढ़कर धर्म नहीं है । जिस स्त्री का सतीत्व खंडित हो गया, वह शूकरी से भी अधम है । सतीत्व की हानि केवल कार्य से ही नहीं होती । स्वामी के सिवा अन्य पुरुष का खयाल करना भी सतीत्व के लिए विघ्नस्वरूप है । तुम विधवा हो । यदि स्वामी के अलावा अन्य पुरुष को मन से भी सोचो तो तुम इस लोक और परलोक में स्त्री-जाति में अधम होकर रहोगी । अतएव सावधान हो जाओ । अगर किसी की ओर तुम्हारा मन उन्मुख हो तो उसे भूल जाओ ।

मनोरमा जोर से हँस पड़ी । फिर मुँह में आँचल देकर हँसने लगी । हँसी बंद ही नहीं हो रही थी । हेमचन्द्र कुछ अप्रसन्न हुए । बोले—हँसते क्यों हो ?

मनोरमा ने कहा—भैया, गंगा के किनारे जाकर खड़े होओ । गंगा से पुकारकर कहो—गंगे, तुम पर्वत को लौट जाओ ।

हेम०—क्यों ?

मनो०—किसी की याद क्या अपनी इच्छा के अधीन होती है । राजपुत्र, काले साँप को याद करके क्या सुख है ? तो भी उसे भूल क्यों नहीं पाते ?

हेम०—उसके डसने की ज्वाला के कारण ।

मनो०—अगर वह तुमको न डसता तो ? तो क्या उसे भूल जाते ?

हेमचन्द्र ने कुछ उत्तर नहीं दिया । मनोरमा कहने लगी—तुम्हारी फूल की माला काला नाग हो गई है, तो भी तुम उसे भूल नहीं पाते । और मैं, मैं तो एक पागल हूँ—मैं अपने पुष्पहार को क्यों तोड़ डालूँ ?

हेमचन्द्र ने कहा—तुम एक तरह से कुछ अन्याय की बात नहीं कहती हो । भूलना स्वेच्छाधीन कार्य नहीं है । अपनी गरिमा में अंधे होकर लोग जो दूसरों को उपदेश करते हैं, उनमें 'भूल जाओ' इस उपदेश से बढ़कर हँसने योग्य और कोई उपदेश नहीं है । कोई किसी से नहीं कहता कि धन की चिन्ता छोड़ो; यश की इच्छा छोड़ो; ज्ञान की चिन्ता छोड़ो; भूख मिटाने की इच्छा छोड़ो; सोना छोड़ो । तो फिर यही क्यों कहें कि प्रेम को छोड़ो ? प्रेम क्या इन सब बातों से छोटा है ? इन सब चीजों की अपेक्षा प्रेम का मूल्य या

महत्व कम नहीं है। किन्तु वह धर्म के मुकाबले में अवश्य छोटा है। धर्म के लिए प्रेम का गला घोट दो। स्त्री का परम धर्म सतीत्व ही है। इसीलिए कहता हूँ कि यदि हो सके तो प्रेम को त्यागो।

मनो०—मैं अबला, ज्ञानहीन और विधवा हूँ। धर्म या अधर्म किसे कहते हैं—यह नहीं जानती। मैं इतना ही जानती हूँ कि धर्म के बिना सच्चा प्रेम उत्पन्न नहीं होता।

हेम०—सावधान मनोरमा! वासना से भ्रांति पैदा होती है और भ्रांति से अधर्म का जन्म होता है। तुम्हें भ्रान्ति तक हो चुकी है। देखूँ, तुम विचार करके बताओ, यदि धर्म से एक की पत्नी तुम मन से अन्य की पत्नी हो गई तो तुम द्विचारणी हुई कि नहीं?

घर के भीतर दीवार में हेमचन्द्र की ढाल और तलवार टँगी हुई थी। मनोरमा ने ढाल हाथ में लेकर कहा—भैया हेमचन्द्र, तुम्हारी यह ढाल किसके चमड़े की बनी है?

हेमचन्द्र हँस पड़े! मनोरमा के मुख की ओर देखा—भोली-भाली बालिका खड़ी है।

———:※:———

सप्तम परिच्छेद

गिरिजाया की खबर

गिरिजाया जब माँझी के घर लौटकर आई, तब उसने निश्चय कर लिया था कि प्राण जाने पर भी वह हेमचन्द्र के नवीन अनुराग की बात मृणालिनी के आगे नहीं प्रकट करेगी। मृणालिनी उसके लौटकर आने की प्रतीक्षा में पिंजड़े में बंद चिड़िया की तरह चंचल हो रही थी—छटपटा रही थी। गिरिजाया को देखते ही उसने कहा—बोलो गिरिजाया, क्या देखा? हेमचन्द्र अब कैसे हैं?

गिरिजाया ने कहा—अच्छे हैं।

मृणा०—क्यों, इस तरह बेमन क्यों बोल रही हो ? तुम्हारी आवाज में उत्साह क्यों नहीं है ? जैसे दुःखित होकर बोल रही हो—क्यों ?

गिरि०—यह क्या कहती हो ?

मृणा०—गिरिजाया, मुझसे छिपाना नहीं; हेमचन्द्र क्या अच्छे नहीं हुए ? ऐसा हो तो मुझसे स्पष्ट बतला दो ; सन्देह की अपेक्षा प्रतीति अच्छी है।

अब की गिरिजाया ने हँसते हुए कहा—तुम क्यों बेकार घबरा रही हो ? मैं निश्चय कहती हूँ, उनके शरीर में कुछ भी क्लेश नहीं है। वह उठकर टहल रहे हैं।

मृणालिनी ने क्षण भर सोचकर कहा—मनोरमा से उनकी कोई बातचीत तुमने सुनी ?

गिरि०—सुनी।

मृणा०—क्या सुना ?

तब गिरिजाया ने हेमचन्द्र और मनोरमा में जो बातचीत हुई थी, वह सुनाई। केवल यह नहीं कहा कि मनोरमा हेमचन्द्र के साथ रात को घूमी थी या उनके क़ान में कुछ कहा था।

मृणालिनी ने पूछा—तुम हेमचन्द्र से मिली थीं ?

गिरिजाया ने कुछ इधर-उधर करके कहा—मिली थी।

मृणा०—उन्होंने क्या कहा ?

गिरि०—तुम्हारे बारे में पूछा था।

मृणा०—तुमने क्या कहा ?

गिरि०—मैंने कहा, तुम अच्छी तरह हो।

मृणा०—मैं यहाँ आई हूँ, यह कहा था ?

गिरि०—नहीं।

मृणा०—गिरिजाया, तुम उत्तर देने में टालमटूल-सी कर रही हो। तुम्हारा मुँह सूखा हुआ है। तुम मेरे मुँह की ओर नज़र भरकर देख नहीं सकती हो। मुझे निश्चित रूप से जान पड़ रहा है कि तुम कोई बुरी खबर मुझसे छिपा रही हो। तुम्हारी बात पर मैं विश्वास नहीं कर पा रही हूँ।

भाग्य में जो कुछ बदा हो, मैं स्वयं हेमचन्द्र को देखने जाऊँगी। हो सके तो मेरे साथ चलो, नहीं तो मैं अकेली ही जाऊंगी।

इतना कहकर मृणालिनी घूँघट से मुँह ढककर वेग से सड़क नाँघकर चल खड़ी हुई।

गिरिजाया उसके पीछे दौड़ पड़ी। कुछ दूर पर आकर मृणालिनी का हाथ उसने पकड़ लिया और बोली—मालकिन, ठहरो। मैंने जो कुछ छिपाया है, वह तुम्हारे आगे प्रकट करती हूँ

मृणालिनी गिरिजाया के साथ झोपड़ी में लौट आई। तब गिरिजाया ने जो कुछ छिपा रखा था वह सब विस्तार के साथ कह सुनाया।

गिरिजाया ने हेमचन्द्र को ठगा था, लेकिन मृणालिनी को नहीं धोखा दे सकी।

——:❀:——
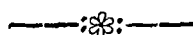
अष्टम परिच्छेद

मृणालिनी की चिट्ठी

मृणालिनी ने कहा—गिरिजाया, उन्होंने क्रोध में यह कहा कि अच्छा हुआ। तुमने जो उनसे कहा था उसे सुनकर वह क्यों न इतना क्रोध करते?

गिरिजाया के मन में भी तब संशय उत्पन्न हुआ। उसने कहा—हाँ, यह बात संभव है।

तब मृणालिनी ने कहा—तुमने ऐसा कहकर अच्छा नहीं किया। इसका उपाय करना चाहिए। तुम खाने-पीने के लिए जाओ, मैं तब तक एक पत्र लिख रखूँगी। तुम भोजन करने के बाद वह पत्र लेकर उनके पास जाना।

गिरिजाया यह स्वीकार करके शहर में भोजन करने के लिए गई।

मृणालिनी ने संक्षेप में वह पत्र लिखा—

"गिरिजाया ने झूठ कहा है। जिस कारण से उसने तुम्हारे आगे मेरे बारे में झूठ बोला है, उसे पूछने पर वह स्वयं विस्तार के साथ बतावेगी।

मैं मथुरा नहीं गई। जिस रात को तुम्हारी अँगूठी देखकर मैं यमुना के किनारे चली आई थी, उस रात से मेरे लिए मथुरा की राह बन्द हो गई है। मैं मथुरा न जाकर तुम्हें देखने के लिए नवद्वीप में आई हूँ। नवद्वीप में आकर भी अब तक तुमसे जो नहीं मिली, इसका कारण यह है कि मुझसे मिलने पर तुम्हारी प्रतिज्ञा झूठी हो जायगी। मेरी अभिलाषा तो केवल तुम्हारे दर्शन करने की है, उसे पूरा करने के लिए सामने आने की क्या आवश्यकता है?"

गिरिजाया इस पत्र को लेकर फिर हेमचन्द्र के डेरे की ओर चल दी। सन्ध्या के समय मनोरमा से पूर्वोक्त वार्तापाप समाप्त होने पर हेमचन्द्र गंगाजी के दर्शन करने जा रहे थे, उस समय राह में गिरिजाया से उनकी भेंट हो गई। गिरिजाया ने उनके हाथ में वह पत्र दे दिया।

हेमचन्द्र ने पूछा—अब फिर तुम क्यों आई?

गिरिजाया—यह पत्र लेकर आई हूँ।

हेमचन्द्र—किसका पत्र है?

गिरिजाया—मृणालिनी का।

हेमचन्द्र को विस्मय हुआ। बोले—यह पत्र तुम्हारे पास कैसे आया?

गिरि०—मृणालिनी यहीं नवद्वीप में हैं। मैंने आपसे उनके मथुरा जाने की बात झूठ कही थी।

हेम०—यह पत्र उन्हीं का है?

गिरि०—हाँ, उन्होंने अपने हाथ से लिखा है।

हेमचन्द्र ने तब पत्र को पढ़े विना ही उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। उन टुकड़ों को पास के जंगल में फेंककर कहा—तुम झूठ कह रही हो, यह मैं इसके पहले ही सुन चुका हूँ। तुम जिस दुष्टा का पत्र लाई हो, वह विवाह करने मथुरा नहीं गई, हृषीकेश ने उसे घर से भगा दिया है, यह खबर इससे पहले ही मैंने सुन ली है। मैं कुलटा के पत्र को नहीं पढ़ूँगा। तुम मेरे सामने से दूर हो!

गिरिजाया चौंककर निरुत्तर हो—हेमचन्द्र का मुँह ताकने लगी।

हेमचन्द्र ने राह के पास लगे एक छोटे-से वृक्ष की टहनी तोड़ ली और डाँटकर कहा—दूर हो, नहीं इसी छड़ी से तुझे मारूँगा।

अब और गिरिजाया से सहा नहीं गया। उसने धीरे-धीरे कहा—बेशक आप बहादुर आदमी हैं! जान पड़ता है, ऐसी ही वीरता दिखाने के लिए आप इतनी दूर नवद्वीप में आये हैं? इसकी कोई जरूरत न थी—यह वीरता मगध में बैठकर भी दिखा सकते थे। मुसलमान के जूते उठाते और गरीब दुखी की लड़की देखकर बेत मारते।

हेमचन्द्र ने अप्रतिभ होकर टहनी हाथ से फेंक दी। किन्तु गिरिजाया का क्रोध शान्त न हुआ। बोली—तुम मृणालिनी से ब्याह करोगे? मृणालिनी तो दूर, तुम मेरे योग्य भी नहीं हो।

इतना कहकर गिरिजाया दर्प के साथ हाथी की चाल से झूमती हुई चल दी। हेमचन्द्र भिखारिन के गर्व को देखकर अवाक् हो गये।

गिरिजाया ने लौटकर मृणालिनी के आगे हेमचन्द्र के आचरण का विशेष रूप से—नमक-मिर्च मिलाकर—वर्णन किया। सुनकर मृणालिनी ने कोई उत्तर नहीं दिया। रोई-धोई भी नहीं। जिस अवस्था में सुन रही थी उसी अवस्था में बैठी रही। देखकर गिरिजाया शंकित हो उठी। परंतु वह समय (या परिस्थिति) मृणालिनी से बातचीत करने के उपयुक्त नहीं है, ऐसा समझकर वह वहाँ से हट गई।

माँझी की झोपड़ी से ज़रा दूर पर एक तालाब या पोखर था। उसमें सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। वहीं जाकर गिरिजाया एक सीढ़ी पर बैठ गई। उस दिन शरद पूर्णिमा की रात थी। उस चटकीली चाँदनी से पुष्करिणी का नीला जल और अधिक चमक रहा था। उससे ऊपर निस्पंद फूलों की पंक्ति अधखिली होकर नीले जल में प्रतिबिंबित हो रही थी। चारो ओर के घने वृक्षों का घेरा ऊपर के आकाश दर्पण का चौखटा बन रहा था। कहीं कोई दो-एक ऊपर उठी हुई वृक्ष-शाखाएँ आकाश पट में चित्रित हो रही थीं। तले के अन्धकार पुंज से ताजे खिले हुए फूलों की सुगंध इधर-उधर फैली हुई थी। गिरिजाया सीढ़ी पर आ बैठी।

गिरिजाया ने पहले धीरे-धीरे हलके-हलके गीत गुनगुनाना शुरू किया—जैसे नई सीखी हुई चिड़िया प्रथम उद्यम में स्पष्ट न गा पा रही हो। क्रमशः उसका स्वर स्पष्ट हो चला—क्रम-क्रम से ऊपर उठने लगा। अंत

को वह सर्वांग-सम्पूर्ण-तान-लय-युक्त कमनीय कंठध्वनि पुष्करिणी, उपवन और आसपास के आकाश को गुंजाती हुई स्वर्ग से उतरी हुई स्वर-सरिता की लहरों की भाँति मृणालिनी के कानों में प्रवेश करने लगी।

गिरिजाया गा रही थी—

परान ना गेलो।
जो दिन पेखनु सई जमुना कि तीरे
गावत नाचत सुन्दर धीरे-धीरे
उँति पर पिय सई, काहे कालो नीरे,
जीवन ना गेलो ?। परान०।
फिरि घर आयनु, ना कहनु बोलि,
तितायनु आँखि नीरे आपना आँचिल,
रोंई रोंई पिय सई, काहे लो परानि
तइखन ना गेलो ?। परान०।
सुननू श्रवणपथे मधुर बाजे,
राधे-राधे-राधे-राधे' बिपिन माझे,
जब शुनन् लागि सई, सो मधुर बोली,
जीवन ना गेलो ?। परान०।
धायनू पिय सई, सोति उपकले,
लुटायनू काँदि सई श्यामपदमूले
सोति पदमूले सई, काहे लो हामारि
मरण ना भेलो ?। परान०।

[विरहिणी राधा कहती है कि प्राण नहीं गये। उसी यमुना के किनारे जिस दिन मैंने देखा श्यामसुन्दर को गाते, धीरे-धीरे नाचते, उसके बाद प्रिय सखी, उस पास के काले जल में जीवन क्यों नहीं गया? लौटकर घर आई, किसी से कुछ बोली नहीं; आँसुओं से आँचल भिगो लिया। प्रिय सखी, तभी रोने-रोते प्राण क्यों नहीं निकल गये? मैंने सुना, वन के बीच (मुरली में) राधे राधे राधे राधे मधुर स्वर में बजा रहा है। जब मैं वह बोली सुनने लगी सखी, तभी जीवन क्यों न गया? (मतलब यह कि तब मर जाती

तो यह विरह की व्यथा तो न सहनी पड़ती)। प्रिय सखी, (वह राधे-राधे की पुकार सुनकर) उसी समय मैं उसी यमुना-तट की ओर दौड़ी गई। रोकर श्याम के चरणों में पड़ गई। सखी, उन्हीं चरणों के समीप रहकर मेरा मरण क्यों न हुआ ?]

गिरिजाया ने गाते-गाते देखा, उसके आगे चन्द्रमा की किरणों के ऊपर मनुष्य की छाया पड़ी है। उसने घूमकर देखा, मृणालिनी खड़ी है। उसके मुख को गौर से देखने पर जान पड़ा, वह रो रही है।

यह देखकर गिरिजाया को हर्ष हुआ—उसने समझ लिया कि मृणालिनी की आँखों से आँसू निकल आये हैं तो अवश्य इससे उसका क्लेश कुछ हल्का हो जायगा। इस बात को सब लोग नहीं समझते। वे सोचते हैं कि "कहाँ, इसकी आँखों में आँसू तो देख ही नहीं पड़ते; फिर इसे काहे का दुःख ?" अगर इस बात को सब लोग समझ पाते कि घोर दुःख-कष्ट में आँसू भी नहीं निकलते और वह स्थिति घातक होती है—आँसू निकलने से—रोने से जी कुछ हल्का हो जाता है तो संसार की कितनी मर्मपीड़ा का निवारण हो सकता।

कुछ देर तक दोनों ही चुप रहीं। मृणालिनी कुछ कह नहीं सकती थी और गिरिजाया भी कुछ पूछ नहीं सकती थी। कुछ देर बाद मृणालिनी ने कहा—गिरिजाया, और एक बार तुमको जाना होगा।

गिरिजाया—फिर उस नीच के पास क्यों जाऊँ ?

मृणालिनी—नीच न कहो। हेमचन्द्र भ्रम में हो सकते हैं—इस संसार में भ्रमरहित कौन है ? किन्तु हेमचन्द्र नीच नहीं हैं। मैं स्वयं उनके पास अभी जाऊँगी, तुम मेरे साथ चलो। तुम मुझ पर बहन से अधिक स्नेह रखती हो। तुमने मेरे लिए क्या नहीं किया ? तुम कभी मुझे अकारण मानसिक पीड़ा न पहुँचाओगी। कभी मुझसे ये सब बातें झूठ न कहोगी। यह मैं निश्चित रूप से जानती हूँ। मगर फिर भी यह बात हेमचन्द्र के ही मुख से सुने बिना कैसे अपने हृदय को स्थिर रख सकती हूँ कि मेरे हेमचन्द्र ने मुझे बिना अपराध के त्याग कर दिया ? अगर मैं उनके अपने मुह से

सुनूँ कि उन्होंने मृणालिनी को कुलटा समझकर त्याग कर दिया, तो मैं इन प्राणों को छोड़ सकूँगी मर सकूँगी।

गिरिजाया—प्राण त्याग कर दोगी ? यह क्या कहती हो मृणालिनी ?

मृणालिनी ने कोई उत्तर नहीं दिया। गिरिजाया के कंधे में हाथ डालकर वह रोने लगी। गिरिजाया भी रोने लगी।

——:※:——
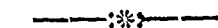
नवम परिच्छेद

अमृत में विष—विष में अमृत

हेमचन्द्र ने माधवाचार्य की बात पर विश्वास करके मृणालिनी को कुलटा समझ लिया था। मृणालिनी के पत्र को न पढ़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले थे—उसकी दूती को मारने के लिए उद्यत हो गये थे। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि वह मृणालिनी को प्यार नहीं करते थे। मृणालिनी के लिए वह राज-पाट छोड़कर मथुरा में रहने लगे थे, मान्य गुरु के ऊपर बाण चलाने को उद्यत हो गये थे, मृणालिनी के लिए ही गौड़ में अपने वादे को—अपने व्रत को भूलकर भिखारिन की खुशामद और विनती की थी।

और अब ? अब हेमचन्द्र ने माधवाचार्य को अपना शूल दिखाकर कहा था—"मृणालिनी को इसी शूल से छेद डालूँगा ?" किन्तु इसलिए क्या इस समय उनका स्नेह या प्रेम एकदम जाता रहा था ? स्नेह प्रेम क्या एक ही दिन में मिट जाता है ? बहुत दिनों तक पहाड़ का पानी पृथ्वी की छाती पर विचरण करके अपने जाने की राह बनाता है; वह नदी क्या एक दिन की सूर्य की तपन से सूख जाती है ? जल के निकास की जो राह बन जाती है, पानी उसी राह से जायगा। उस निकास को रोक दो, पानी फैलकर आस-पास की पृथ्वी को बोर देगा।

हेमचंद्र उस रात को अपने शयनकक्ष में पलँग पर लेटे उसी खुली हुई खिड़की के पास सिर रखे खिड़की के बाहर देख रहे थे। वह क्या रात्रि की शोभा निहार रहे थे। अगर उस समय उनसे कोई पूछता कि रात चाँदनी है या अँधेरी, तो वह सहसा इसका उत्तर नहीं दे सकते थे। उनके हृदय के भीतर जिस रात्रि का उदय हुआ था, उसे ही केवल वह देख रहे थे। वह रात्रि तो उस समय भी चाँदनी रात थी। नहीं तो उनका तकिया गीला क्यों है? केवल बादल उठ रहे हैं। जिसके हृदयाकाश में अन्धकार विराजता है, वह रोता नहीं है।

जो कभी रोया नहीं, वह मनुष्यों में अधम है। उस पर कभी विश्वास न करना। निश्चित जानो, उसने कभी पृथ्वी के सुख को नहीं भोगा—उससे पराया सुख कभी नहीं देखा जाता, पराये सुख को वह सह नहीं सकता। ऐसा हो सकता है कि कोई आत्मजयी—अपने चित्त पर काबू रखनेवाला महात्मा आँसू गिराये बिना भारी मानसिक पीड़ाओं को सह रहा हो या सहता रहता हो; किन्तु उसने अगर कभी एकांत में एक बूँद आँसू से धरती गीली न की हो, तो वह चित्तविजयी महात्मा चाहे भले ही हों, लेकिन मैं किसी चोर के साथ मैत्री या प्रेम भले ही करूँ, पर उससे कभी न करूँगा।

हेमचंद्र रो रहे थे—जिसे पापिष्ठा, कुलटा, मन में स्थान देने के अयोग्य समझा था, उसी मृणालिनी के लिए इस समय वह रो रहे थे। क्या वह मृणालिनी के दोष की आलोचना कर रहे थे? यह अवश्य कर रहे थे, किन्तु केवल यही नहीं कर रहे थे। बीच-बीच में मृणालिनी के प्रेम-परिपूर्ण मुखमंडल, उसकी प्रेमपरिपूर्ण बातें, उसके प्रेमपरिपूर्ण सब कार्य याद करते थे। वही मृणालिनी क्या अविश्वासिनी है? एक दिन मथुरा में हेमचंद्र मृणालिनी के पास एक पत्र भेजने के लिए व्यग्र हो रहे थे। कोई पत्र ले जाने योग्य विश्वस्त आदमी नहीं मिला। किन्तु उन्हें अपने घर के झरोखे पर मृणालिनी खड़ी देख पड़ी। तब हेमचंद्र ने एक आम के फल के ऊपर अपनी बात लिखी और वह फल मृणालिनी की गोद को लक्ष्य करके उन्होंने उस झरोखे में फेंका। आम को पकड़ने के लिए मृणालिनी कुछ आगे बढ़ आई। लक्ष्य चूक गया और वह आम मृणालिनी की गोद में न गिरकर उसके कान से जा टकराया। वैसे

ही उसकी चोट से उसके कान का आभूषण कान फाड़कर गिर पड़ा। रक्त से मृणालिनी की गर्दन लाल हो गई। मृणालिनी ने उधर ध्यान भी नहीं दिया। हँसकर वह आम उठा लिया। उस पर लिखी बात को पढ़कर उसी समय उसी आम की पीठ पर उसका उत्तर लिखकर वह आम हेमचन्द्र की ओर फेंक दिया। जब तक हेमचन्द्र सामने खड़े रहे, तब तक वह झरोखे पर हँसती खड़ी रही। हेमचन्द्र को वह घटना याद आई। वही मृणालिनी क्या अविश्वासिनी हो सकती है? यह संभव नहीं। और एक दिन मृणालिनी के बिच्छू ने डंक मार दिया था। उसकी यंत्रणा से मृणालिनी को बड़ी पीड़ा हो रही थी। मृणालिनी की एक दासी इसकी अच्छी दवा जानती थी। उस दवा से जलन और पीड़ा तत्काल मिट जाती है। दासी शीघ्र औषध लाने को गई। इसी बीच हेमचन्द्र की दूती ने जाकर मृणालिनी से कहा कि बगिया में हेमचन्द्र खड़े उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। क्षण भर में वह दवा आ जाती; किंतु मृणालिनी ने उसके आने की राह नहीं देखी—उस मरणाधिक यंत्रणा को भूलकर वह वैसे ही बगिया में हेमचन्द्र से मिलने चली गई। दवा का प्रयोग फिर नहीं हुआ। हेमचन्द्र को वह घटना याद आई। वही मृणालिनी क्या ब्राह्मण-कुल-कलंक व्योमकेश के लिए हेमचन्द्र के निकट अविश्वासिनी होगी? ना, यह कभी नहीं हो सकता। और एक दिन हेमचन्द्र मथुरा से अपने गुरु माधवाचार्य के दर्शन करने जा रहे थे। मथुरा से एक पहर का रास्ता चलने के बाद हेमचन्द्र के दर्द होने लगा। वह एक धर्मशाला में पड़ रहे। किसी तरह यह समाचार अन्तःपुर में मृणालिनी ने सुन पाया। उसी रात को मृणालिनी केवल अपनी धाय को साथ लेकर चार कोस की मंजिल तय करके हेमचन्द्र को देखने और देखभाल करने चली आई। जब मृणालिनी उस धर्मशाला में आकर उपस्थित हुई, उस समय वह राह चलने की थकावट से चूर हो रही थी—निर्जीव हो रही थी, पैर कट-फट गये थे, उनसे खून निकल रहा था। उसी रात को मृणालिनी पिता के भय से लौट पड़ी। घर आकर वह स्वयं बीमार पड़ गई। हेमचन्द्र को यह घटना याद आई। वही मृणालिनी क्या नराधम व्योमकेश के लिए अविश्वासिनी हो सकती है? जो कोई इस बात पर विश्वास करे, वह स्वयं अविश्वासी है। वह नराधम है, वह महामूर्ख है।

हेमचन्द्र सौ-सौ बार अपने मन में सोचने लगे—क्यों मैंने मृणालिनी का वह पत्र नहीं पढ़ा ? और यही क्यों न पूछा-जाना कि वह इतनी दूर नवद्वीप में क्यों आई है ? उन्होंने उस पत्र के टुकड़े जिस जगह जंगल में फेंक दिये थे, वे अगर वहाँ मिल जायँ तो उन्हें जोड़कर, जहाँ तक हो सके, उसका मर्म जान सकेंगे—ऐसी प्रत्याशा करके एक बार उस जंगल तक गये थे; किन्तु वहाँ जंगल के अंधकार में कुछ भी उन्हें न देख पड़ा। हवा उन टुकड़ों को न जाने कहाँ उड़ा ले गई थी। अगर उस समय अपना दाहिना हाथ काटकर देने से भी हेमचन्द्र उन टुकड़ों को पा सकते तो सहर्ष वह इसके लिये तैयार हो जाते।

फिर वह सोचते थे—आचार्य क्यों झूठ बोलेंगे ? आचार्य अत्यन्त सत्य पर निष्ठा रखते हैं—वह कभी झूठ न बोलेंगे। विशेषकर मुझे वह पुत्र से अधिक स्नेह करते हैं। जानते हैं कि इस खबर से मुझे मरण से बढ़कर यंत्रणा होगी। फिर वह क्यों मिथ्या भाषण करके मुझे इतनी पीड़ा पहुँचायेंगे—इतनी यंत्रणा देंगे ? और उन्होंने भी अपनी इच्छा से यह बात मुझसे नहीं कही। मैंने दर्प के साथ उनसे यह बात निकाली है, जोर देकर उनसे कहलवाई है। जब मैंने कहा कि मैं सब कुछ जानता हूँ, तभी उन्होंने यह बात अपने मुंह से निकाली है। मिथ्या बोलने का उद्देश्य रहने पर भी वह कहने की इच्छा क्यों न करते ? लेकिन हो सकता है कि हृषीकेश ने उनसे झूठ बोला हो। किन्तु हृषीकेश ही क्यों अकारण गुरु से झूठ बोलेगा ? और मृणालिनी ही उनका घर छोड़कर नवद्वीप क्यों आती ?

जब इस तरह सोचते हैं, तब हेमचन्द्र का मुँह स्याह पड़ जाता है, माथे पर पसीना आ जाता है। वह लेटे-लेटे उठ बैठते हैं, दाँतों से होंठ चबाते हैं, आँखें लाल होकर फैल जाती हैं। हाथ में बर्छा लेने के लिए मुट्ठी बँध जाती है। फिर मृणालिनी का प्रेमपूर्ण मुखमण्डल याद आता है, और वैसे ही वह जड़ से कटे हुए वृक्ष की तरह पलँग पर गिर पड़ते हैं, तकिये में मुंह छिपाकर एक बच्चे की तरह रोने लगते हैं। हेमचन्द्र इसी तरह रो रहे थे, इसी समय उनके शयनकक्ष का द्वार खुला। गिरिजाया ने भीतर प्रवेश किया।

हेमचन्द्र ने पहले समझा, मनोरमा है। लेकिन वैसे ही देखा वह

कुसुमसुकुमार मूर्ति नहीं है। फिर पहचाना, गिरिजाया है। वह पहले विस्मित, फिर आह्लादित हुए। और अन्त को कौतूहल से भर गये। बोले—अब तुम क्यों आई हो?

गिरिजाया ने कहा—मैं मृणालिनी की दासी हूँ। मृणालिनी को आपने त्याग कर दिया है; लेकिन आप मृणालिनी के त्याज्य नहीं हैं। अतएव मुझे फिर आना पड़ा है। मुझे बेंत मारने की साध हो तो खुशी से मारिये। अबकी मैं पक्का इरादा करके आई हूँ, अपनी मालकिन के लिए वह भी सहूँगी।

इस तिरस्कार से हेमचन्द्र अत्यन्त अप्रतिभ हुए। बोले—तुम्हें कोई डर नहीं है। स्त्री को मैं नहीं मारूँगा। तुम क्यों आई हो, बताओ मृणालिनी कहाँ हैं? तीसरे पहर तुमने कहा था कि वह नवद्वीप में आई हैं—नवद्वीप में क्यों आई हैं? उनका पत्र न पढ़कर मैंने अच्छा नहीं किया।

गिरिजाया—मृणालिनी नवद्वीप में आपको देखने के लिए ही आई हैं।

हेमचन्द्र के शरीर में रोमांच हो आया। इसी मृणालिनी को उन्होंने कुलटा कहकर अपमानित किया है? उन्होंने फिर गिरिजाया से कहा—मृणालिनी कहाँ है?

गिरिजाया—वह आपके निकट जन्म-भर के लिए बिदा होने आई हैं। सरोवर के किनारे खड़ी हैं। आप आइए।

यह कहकर गिरिजाया चली गई। हेमचन्द्र उसके पीछे-पीछे दौड़े गये

गिरिजाया बावली के किनारे, जहाँ मृणालिनी सीढ़ी पर बैठी हुई थी, पहुँची। हेमचन्द्र भी वहीं आये। गिरिजाया ने कहा—मालकिन। उठो। राजकुमार आये हैं।

मृणालिनी उठकर खड़ी हो गई। दोनो ने दोनो के मुँह की ओर देखा, चार आँखें हुईं। मृणालिनी के आँसू बह चले—आँखों पर पर्दा-सा पड़ गया। अवलम्बन की शाखा कट जाने पर जैसे उस शाखा से लिपटी हुई लता धरती पर गिर जाती है, वैसे ही मृणालिनी हेमचन्द्र के पैरों के पास गिर पड़ी। गिरिजाया आड़ में चली गई।

——:

दशम परिच्छेद

इतने दिनों के बाद

हेमचंद्र ने हाथ पकड़कर मृणालिनी को उठाया। दोनो परस्पर आमने-सामने खड़े हुए।

इतने दिन बाद दोनो जनों की भेंट हुई। जिस दिन प्रदोष-काल में यमुना के तट पर दोपहर की गर्म हवा के झोंकों से मुरझाये हुए वकुलवृक्ष के नीचे खड़े होकर नीलजलमयी यमुना की चंचल लहरों के ऊपर नक्षत्रकिरणों के प्रतिबिंब को निरखते-निरखते सजलनयन होकर दोनो परस्पर एक दूसरे से विदा हुए थे, उसके बाद आज उनकी यह भेंट हुई थी। गर्मी के बाद वर्षा, वर्षा के बाद शरद बीत गई, लेकिन इन दोनो प्रेमियों के हृदय के भीतर जो बेशुमार दिन गुजर गये हैं, उनकी गिनती क्या ऋतुओं की गणना से की जा सकती है?

उस अर्द्धरात्रि के समय स्वच्छ सलिलवाली बावली के किनारे दोनो जने परस्पर आमने-सामने खड़े हुए। चारो ओर वह घना वन, बड़े-बड़े घने वृक्ष—जिनसे लताएँ लिपटी हुई थीं, दृष्टिपथ को रोककर खड़े थे। सामने नील-जलद-खंड सी बावली का जल था, जिसमें सेवार और कोकाबेली खिली हुई थी। सिर के ऊपर चंद्रमा, नक्षत्रमंडली, छोटे-छोटे बादलों के टुकड़ों से सुशोभित आकाश, प्रकाश से पूर्ण होकर जैसे विहँस रहा था। चाँदनी—आकाश में, वृक्षों की चोटियों पर, लता-पल्लवों में, बावली की सीढ़ियों पर, नीले जल पर—सर्वत्र स्वर्गीय सुषमा के साथ हँस रही थी। पृथ्वी के ऊपर चाँदनी धुली हुई सफेद चाँदनी-सी बिछ गई थी। प्रकृति में स्पंदन न था। वह स्थिर, धीर गंभीर बनी हुई थी। उसी धीर-गंभीर बाह्य प्रकृति के प्रासाद के बीच मृणालिनी और हेमचंद्र आमने-सामने खड़े हुए।

भाषा में क्या शब्द न थे? उनके मन में क्या कहने के लिए कोई बात न थी? अगर मन में कहने की कोई बात थी, अगर भाषा में शब्द थे तो फिर वे कोई बात क्यों नहीं करते? उस समय जैसे वे आँखों से देखने

में ही उन्मत्त थे—देखने का ही नशा उन पर सवार था—फिर वे बातें कैसे करें ? इस समय केवल प्रणयी के निकट रहने में ही इतना सुख है कि हृदय के भीतर अन्य प्रकार के सुख के लिए जगह नहीं रहती। जो मनुष्य उस सुख को भोगता रहता है, वह फिर बात करने के सुख की चाह नहीं करता।

उस समय कहने के लिये इतनी बातें जमा रहती हैं कि कौन बात पहले की जाय, यह ठीक करना कठिन हो जाता है।

मनुष्य की भाषा में ऐसा कौन शब्द है, जिसका उस समय प्रयोग किया जा सके ?

वे दोनो परस्पर एक दूसरे का मुह ताकने लगे। हेमचन्द्र ने मृणालिनी का वह प्रेममय मुख फिर देखा—हृषीकेश के कथन की प्रतीति दूर होने लगी। इस ग्रन्थ की तो प्रत्येक पंक्ति में पतिव्रता शब्द लिखा है। हेमचन्द्र ने मृणालिनी की आँखों पर दृष्टि डाली—उन अपूर्व विशाल नीलकमलों को नीचा दिखानेवाले और अन्तःकरण के दर्पण-स्वरूप नेत्रों को टकटकी लगाये देखते रहे—उनसे केवल प्रेम के आँसू बह रहे थे। वे आँखें जिसकी हैं, वह क्या अविश्वासिनी है ?

हेमचन्द्र ने ही पहले बात शुरू की। पूछा—मृणालिनी, कैसी हो ?

मृणालिनी इस प्रश्न का कुछ उत्तर नहीं दे सकी। अभी तक उसका चित्त शान्त नहीं हो पाया था। उत्तर देना चाहा; किन्तु फिर आँखों में आँसू आ गये—गला भर आया, गला रुँध गया। मुह से बोल नहीं निकला।

हेमचन्द्र ने फिर पूछा—तुम यहाँ क्यों आई हो ?

तथापि मृणालिनी उत्तर न दे पाई। हेमचंद्र ने हाथ पकड़कर उसे एक सीढ़ी के ऊपर बिठाया, आप भी पास बैठे। मृणालिनी के चित्त में जो कुछ स्थिरता आई थी, वह भी इस प्यार के व्यवहार से जाती रही। धीरे-धीरे उसका सिर हेमचन्द्र के कंधे पर टिक गया। मृणालिनी इसे जानकर भी जान नहीं पाई। वह फिर रोने लगी। उसके आँसुओं से हेमचन्द्र का कंधा और छाती भीग गई। इस संसार में मृणालिनी ने जितने सुखों

का अनुभव किया था, उनमें कोई भी इस रोने के सुख के समान नहीं।

हेमचन्द्र ने फिर कहा—मृणालिनी ! मैंने घोर अपराध किया है—मैं तुम्हारे निकट अक्षम्य अपराधी हूँ। मगर तुम मेरे उस अपराध को क्षमा करना। मैंने तुम्हारे कलंक की बात सुनकर उसपर विश्वास कर लिया था। विश्वास करने का कुछ-कुछ कारण भी हो गया था। अब तुम उसके विषय में बताकर उस कारण को दूर कर सकोगी। जो मैं तुमसे पूछूँ, उसका साफ़-साफ़ उत्तर दो।

मृणालिनी ने हेमचन्द्र के कंधे से सिर न उठाकर कहा—क्या पूछते हो, पूछो ?

हेमचन्द्र ने कहा—तुमने हृषीकेश का घर क्यों छोड़ा ?

यह नाम सुनते ही कुपित नागिन की तरह सिर उठाकर मृणालिनी ने कहा—हृषीकेश ने मुझे अपने घर से निकल जाने के लिये कहा था।

हेमचंद्र व्यथित हुए—थोड़ा-सा सन्देह भी हुआ। फिर कुछ सोचने लगे। इसी अवकाश में मृणालिनी ने फिर हेमचन्द्र के कंधे पर सिर रख दिया। उस सुखदायक स्थान में सिर रखने का सुख इतना था कि मृणालिनी उससे अपने को वंचित नहीं रख सकी।

हेमचन्द्र ने पूछा—हृषीकेश ने तुमको घर के बाहर क्यों निकाल दिया ?

मृणालिनी ने हेमचन्द्र की छाती में मुह छिपाकर बहुत धीमे स्वर में कहा—तुम स क्या बताऊँ ? हृषीकेश ने मुझे कुलटा कहकर निकाल दिया।

सुनते ही तीर की तरह हेमचन्द्र उठ खड़े हुए। मृणालिनी का सिर उनकी छाती से छिटककर सीढी पर जा टकराया।

"पापिन ! तूने अपने मुह से स्वीकार कर लिया !" यह बात कहकर हेमचन्द्र वेग से चल दिये। राह में गिरिजाया उन्हें देख पड़ी। गिरिजाया उनकी पानी भरे बादल-सी भयानक मूर्ति देखकर चौंककर सामने खड़ी हो गई। लिखते लज्जा लगती है—लेकिन लिखना ही पड़ता है—हेमचन्द्र ने लात मारकर गिरिजाया को राह से हटा दिया। बोले—तू जिसकी दूती है, उसे पदाघात करने से मेरा पैर कलंकित होता !—इतना कहकर हेमचन्द्र आँधी की तरह चले गये।

जिसमें धैर्य नहीं है, जो क्रोध के आते ही अंधा हो जाता है, वह संसार के सभी सुखों से वंचित रहता है। कवि ने कल्पना की है कि केवल अधैर्य या उतावली के दोष से वीरश्रेष्ठ द्रोणाचार्य मारे गए। "अश्वत्थामा हतः" इतना सुनकर ही उन्होंने अपना धनुष-बाण रख दिया। पूछताछ कर उसका विशेष वृत्तान्त जानने की चेष्टा नहीं की। हेमचंद्र में केवल अधैर्य ही नहीं,—अधैर्य, अभिमान और क्रोध, तीन-तीन दोष थे।

शीतल पवन के साथ आनेवाली उषा की पिंगलवर्ण मूर्ति बावली के किनारे प्रगट हुई। उस समय भी मृणालिनी चोट खाये हुए माथे को पकड़े उसी सीढ़ी पर बैठी थी।

गिरिजाया ने पूछा—मालकिन, चोट क्या भारी जान पड़ती है?

मृणालिनी ने कहा—काहे की चोट?

गिरिजाया ने कहा—सिर माथे की चोट।

मृणालिनी—माथे की चोट? मुझे तो नहीं मालूम होती।

चतुर्थ खण्ड

प्रथम परिच्छेद

जाल फैलानेवाला मकड़ा

जिस समय मृणालिनी के सुख का सितारा डूब रहा था, उसी समय गौड़ देश की सौभाग्यलक्ष्मी भी उसी रात अस्त होने जा रही थी। जो व्यक्ति चाहता तो गौड़ देश की—गौड़-राज्य की रक्षा कर सकता था, वह मकड़े की तरह एकान्त में बैठकर अभागी जन्मभूमि को पराधीनता में जकड़ने के लिए जाल फैला रहा था। आधी रात के समय एकान्त में बैठकर धर्माधिकारी और प्रधानमंत्री पशुपति अपने दाहने हाथ गुप्तचर शान्तशील को डाँट रहा था—शान्तशील! सबेरे जो तुमने खबर दी है, वह केवल तुम्हारी असावधानी का परिचयमात्र है। उससे यह सिद्ध होता है कि तुम में काम करने की निपुणता नहीं है। अब और किसी काम का भार तुम्हें सौंपने की इच्छा नहीं है।

शान्तशील ने कहा—जो असाध्य है, वही मैं नहीं कर पाया। और कोई काम देकर मेरी निपुणता का परिचय लीजिए।

पशुपति—सैनिकों को क्या हिदायत की गई है?

शान्त—उनसे कहा गया है कि हम लोगों की आज्ञा पाये बिना कोई युद्ध का साज न सजे।

पशु०—प्रान्तपालों और कोष्ठपालों को क्या आदेश दिया गया है?

शान्त—उनसे मैंने कह दिया है कि शीघ्र ही यवन-सम्राट के पास से 'कर' लेकर कुछ यवन-दूत आ रहे हैं! उनका रास्ता न रोकें।

पशु०—दामोदर शर्मा ने मेरे आदेश के अनुसार काम किया है कि नहीं?

शान्त—उन्होंने बड़ी चतुराई के साथ काम किया है।

पशु०—सो किस प्रकार ?

शान्त—उन्होंने एक पुराने लिखे ग्रन्थ का पन्ना बदलकर उसमें अपने बनाये कुछ श्लोक जोड़ दिये हैं। वह बदला हुआ पन्ना ले जाकर आज तीसरे पहर राजा को सुनाया है और माधवाचार्य की खूब निन्दा की है।

पशु०—नये श्लोकों में भविष्यत् गौड़-विजेता के रूप और आकार-प्रकार का वर्णन विस्तार से किया गया है। उसके बारे में महाराज ने कुछ पता लगाया था ?

शान्त—लगाया था। मदनसेन अभी हाल ही में काशी से लौटे हैं। यह समाचार महाराज को मालूम है। महाराज ने उन श्लोकों में भविष्य गौड़-विजेता के अंगों का वर्णन सुनकर मदनसेन को बुलाने के लिए भेजा। मदनसेन के उपस्थित होने पर महाराज ने पूछा—क्यों तुम मगध में यवनराज के प्रतिनिधि को देख आये हो ? उसने कहा—देख आया हूँ। जब महाराज ने आज्ञा की कि वह देखने में कैसा है, वर्णन करो। फिर मदनसेन ने बख्तियार खिलजी का जैसा रूप देखा था वैसा ही ठीक-ठीक वर्णन कर दिया। उन श्लोकों में भी वैसा ही वर्णन था। बस, गौड़ेश्वर ने भी अपने राजत्व का छिन जाना निश्चित समझ लिया।

पशु०—इसके बाद ?

शान्त—तब राजा रोने लगे। बोले—मैं इस वृद्धावस्था में क्या करूँगा ? देखता हूँ, सपरिवार यवन के हाथ मारा जाऊँगा। तब दामोदर शर्मा ने हमारे सिखलाने के अनुसार कहा—महाराज, इसका एक अच्छा उपाय है। वह यह कि सुयोग रहते ही तीर्थयात्रा के लिये सपरिवार चल दीजिए। प्रधान मंत्री को राज-काज सब सौंप दीजिए। यह करने से आपके शरीर की रक्षा हो जायगी। बाद को यदि शास्त्र मिथ्या हुआ, तो राज्य फिर प्राप्त कर लीजिएगा।

पशु०—फिर ?

शान्त—इस परामर्श से सन्तुष्ट होकर महाराज ने अपनी यात्रा के लिए नाव तैयार रखने की आज्ञा दे दी है। वह शीघ्र ही सपरिवार तीर्थयात्रा करेंगे।

पशु०—शाबास दामोदर। तुम्हें भी मैं शाबासी देता हूँ। अब मैं अपनी मन-कामना सिद्ध होने की संभावना देखता हूँ। अगर निहायत ही भाग्यदोष से स्वाधीन राजा न हो सका तो यवन-राजा का प्रतिनिधि अवश्य बन जाऊँगा। कार्य सिद्ध होने

पर तुम लोगों को यथाशक्ति पुरस्कार देने में कोई कमी नहीं करूँगा—यह तो तुम जानते ही हो। अब तुम जाओ। कल सवेरे ही महाराज की तीर्थ ए नाव तैयार रहे!

शान्तशील विदा हुआ।

—:*:—

द्वितीय परिच्छेद

विना डोरे का हार

पशुपति अपने ऊँचे महल-जैसे भवन में बहुत-से भृत्यों के साथ अवश्य रहते थे; किन्तु उनकी वह पुरी जंगल से भी अधिक अँधेरी थी। घर की जो रोशनी होते हैं, जिनसे घर गुलज़ार होता है, वे स्त्री, पुत्र, परिवार उनके घर में न थे।

आज शान्तशील के साथ पूर्वोत्तर बातचीत करने के बाद पशुपति के मन में यही ख़्याल पैदा हुआ। उन्होंने मन में सोचा—इतने समय के बाद जान पड़ता है, यह अंधकारपुरी जगमगा उठेगी। यदि जगदम्बा सहायता करें तो मनोरमा इस अन्धकार को मिटावेगी।

इस तरह सोचते-सोचते पशुपति ने सोने के पहले अष्टभुजा देवी की मूर्ति को नित्य की तरह प्रणाम-वंदना करने के लिये देवी के मंदिर में प्रवेश किया। प्रवेश करते ही उन्होंने देखा, वहाँ मनोरमा बैठी हुई है।

पशुपति ने पूछा—मनोरमा, तुम कब आई?

मनोरमा पूजा से बचे हुए फूल लेकर विना डोरे के माला गूँथ रही थी। उसने पशुपति की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

पशुपति ने कहा—मुझसे बात करो। जब तक तुम रहती हो, तब तक मैं सब यंत्रणा भूला रहता हूँ।

मनोरमा ने सिर उठाकर देखा। पशुपति के मुख की ओर ताककर क्षणभर बाद उसने कहा—मैं तुमसे कुछ कहने आई थी, किंतु अब वह बात याद नहीं आ रही है।

पशुपति ने कहा—तुम उसे याद करो। मैं अपेक्षा करता हूँ।

पशुपति बैठे रहे—मनोरमा माला गूँथने लगी।

बहुत देर बाद पशुपति ने कहा—मुझको भी तुमसे कुछ कहना है, मन लगाकर

उसे सुनो। मैंने इतनी अवस्था तक केवल विद्या पढ़ी है—विद्योपार्जन किया है, काम-काज की आलोचना की है, धन कमाया है। जिससे अनुराग था, वही किया है। विवाह के प्रति अनुराग नहीं था, इस लिए विवाह नहीं किया। किन्तु जब से तुमको देख पाया है, तब से मनोरमा को प्राप्त करना ही मेरा एकमात्र ध्येय बन गया है—मेरा ज्ञान, ध्यान सब तुम हो गई हो। उसी लक्ष्य के लिए—तुम्हें पाने के लिए—एक अतिदारुण व्रत में प्रवृत्त हुआ हूँ। अगर जगदीश्वरी भगवती ने अनुग्रह किया तो दो-चार दिन के भीतर ही मैं राज्य प्राप्त करूँगा और तुम से विवाह कर लूँगा। इस विवाह में तुम्हारे विधवा होने का जो विघ्न है, उसे मैं शास्त्र के प्रमाण देकर दूर कर सकूँगा—विधवा-विवाह को शास्त्रसंगत प्रमाणित कर सकूँगा। किन्तु उसमें एक दूसरा विघ्न यह है कि तुम कुलीन ब्राह्मण की कन्या हो; तुम्हारे पिता जनार्दन शर्मा श्रेष्ठ कुलीन हैं और मैं श्रोत्रिय ब्राह्मण हूँ।

मनोरमा इन सब बातों को सुन रही थी कि नहीं, संदेह है। पशुपति ने देखा कि मनोरमा इस समय अपनी प्रखर प्रतिभा खो बैठी है। पशुपति सरला विकाररहिता बालिका मनोरमा को प्यार करते थे, प्रौढ़ा, तीक्ष्ण बुद्धिशालिनी मनोरमा को बहुत डरते थे। किन्तु आज इस भावान्तर या परिवर्तन से वह सन्तुष्ट नहीं हुए। तथापि फिर उद्यम करके पशुपति ने कहा—किन्तु कुल-व्यवस्था तो शास्त्रमूलक नहीं है। इसका आधार शास्त्र नहीं, लोकाचार है। कुल के नाश से धर्म का नाश या जाति का नाश नहीं होता। तुम्हारे पिता के अनजान में अगर तुमसे ब्याह कर सकूँ तो उसमें हानि क्या है? तुम राजी हो जाओ तो मैं यह कर सकता हूँ। बाद को अगर तुम्हारे पिता को मालूम ही हो जाय तो ब्याह तो लौटाया नहीं जा सकता।

मनोरमा ने कोई उत्तर नहीं दिया। शायद वह ये सब बातें सुन ही नहीं रही थी। एक काली बिल्ली उसके पास आकर बैठी थी। मनोरमा वह बिना डोरे की माला उसी के गले में पहनाना चाहती थी। उसके गले में डालते ही माला बिखर गई। तब मनोरमा ने अपने सिर से कुछ बाल तोड़ लिए और उन्हीं बालों के सूत से फिर माला गूँथने लगी।

पशुपति उत्तर न पाकर चुपचाप माला गूँथने में मनोरमा की सुंदर गोरी-गोरी उँगलियों का संचालन मुग्ध दृष्टि से देखने लगे।

तृतीय परिच्छेद

चिड़िया पिंजड़े में

पशुपति मनोरमा की बुद्धि के दीपक को जलाने का बहुत कुछ यत्न करने लगे, पर फल कुछ न निकला। अन्त को उन्होंने कहा—मनोरमा, रात अधिक हुई ; अब मैं सोने जाऊँ ?

मनोरमा ने अम्लान वदन से कह दिया—जाओ।

पर पशुपति सोने नहीं गये। बैठकर माला गूँथना देखने लगे। फिर उन्होंने सोचा, दूसरा कोई उपाय करने से शायद काम बने। वह उपाय यही है कि इसके मन में डर पैदा किया जाय। यह सोचकर पशुपति ने मनोरमा को डराने के लिए कहा—मनोरमा, अगर इस बीच में यवन आ जायँ तो तुम कहाँ जाओगी ?

मनोरमा ने माला के ऊपर से नज़र हटाकर कहा—घर में ही रहूँगी।

पशुपति ने कहा—घर में तुम्हारी कौन रक्षा करेगा ?

मनोरमा ने पहले ही की तरह लापर्वाही से कहा—जानती नहीं। कोई उपाय नहीं।

पशुपति ने फिर पूछा—तुम मुझसे क्या कहने के लिए मंदिर में आई हो ?

मनोरमा—देवता को प्रणाम करने आई हूँ।

पशुपति खीझ उठे। बोले—मैं तुमसे बिनती करता हूँ मनोरमा, अब जो मैं कहता हूँ, उसे मन लगाकर सुनो। तुम आज बताओ, मुझसे ब्याह करोगी कि नहीं ?

मनोरमा का माला गूँथना पूरा हो गया था। वह उस माला को उसी काली बिल्ली के गले में डालने की चेष्टा कर रही थी, पशुपति की बात उसके कानों में नहीं गई। बिल्ली माला पहनने में विशेष अनिच्छा प्रकट कर रही थी—जब-जब मनोरमा उसके गले में माला पहनाती थी, वह माला के भीतर से अपना गला निकाल लेती थी। मनोरमा कुंदकली-से दाँतों से होठ दबाकर मुस्काती और फिर उसके गले में माला पहनाती थी। पशुपति ने अधिक खीझकर बिल्ली के एक थप्पड़ मारा—बिल्ली दुम उठाकर दूर भाग गई। मनोरमा ने उसी तरह होठ दाँतों से दबाये हँसते-हँसते वह माला पशुपति के गले में पहना दी।

दिल्ली का प्रसाद मस्तक पर पाकर राजा का प्रसाद भोग करनेवाले धर्माधिकारी पशुपति हतबुद्धि-से हो गये। थोड़ा क्रोध भी आ गया। किन्तु होठ दाँतों से दबाये हास्यमयी मनोरमा की इस समय की अनुपम रूपमाधुरी देखकर उनका सिर चकरा गया। उन्होंने मनोरमा को हृदय से लगाने के लिए हाथ फैलाये, वैसे ही मनोरमा छलाँग मारकर दूर जा खड़ी हुई। रास्ते में फन उठाये काले नाग को देखकर पथिक जैसे दूर जा खड़ा होता है, वैसे ही दूर जा खड़ी हुई।

पशुपति अप्रतिभ हुए; क्षण भर तो वह मनोरमा के मुख की ओर ताक नहीं सके। फिर देखा, मनोरमा प्रौढ़ अवस्था की प्रफुल्लमुखी महिमामयी सुन्दरी के रूप में खड़ी थी।

पशुपति ने कहा—मनोरमा बुरा न मानो। तुम मेरी पत्नी हो, मुझसे ब्याह करो।

मनोरमा ने पशुपति पर एक तीव्र दृष्टि डालकर कहा—पशुपति! केशव की लड़की कहाँ है? जानते हो?

पशुपति ने कहा—केशव की कन्या कहाँ है—यह मैं नहीं जानता—जानना भी नहीं चाहता। तुम्हीं मेरी एकमात्र पत्नी हो।

मनोरमा ने कहा—तुम नहीं जानते पर मैं जानती हूँ कि केशव की कन्या कहाँ है। बताऊँ?

पशुपति अवाक् होकर मनोरमा के मुख को ताकने लगे। मनोरमा कहने लगी—एक ज्योतिषी ने गणना करके कहा था कि केशव की लड़की अल्प अवस्था में ही विधवा होकर पति के साथ सती हो जायगी। इस बात से, थोड़े ही समय में कन्या को गँवाने के भय से, केशव को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सर्वनाश के भय से, लड़की का ब्याह कर दिया; किन्तु विधाता का लिखा कौन मेट सकता है? उन्होंने यही करने के लिए—भाग्य का लेख अन्यथा करने के लिए यह उपाय किया, कि उसी रात को लड़की को लेकर चुपचाप प्रयाग को भाग गये। उनका अभिप्राय यह था कि उनकी लड़की स्वामी की मृत्यु का समाचार कभी न सुन पावे। दैवसंयोग से प्रयाग में केशव की मृत्यु हो गई। उनकी लड़की की माता पहले ही मर चुकी थी, अब पिता भी नहीं रहे। मरते समय केशव ने अपनी कन्या हेमवती को आचार्य के हाथ में सौंप दिया और कहा कि इस अनाथ लड़की को अपने घर में रखकर इसका पालन कीजिएगा। इसके स्वामी का नाम पशुपति है; किन्तु ज्योतिषियों ने कहा है कि यह अल्पावस्था में ही विधवा होकर स्वामी के साथ सती हो जायगी।

अतएव आप मुझसे यह प्रतिज्ञा कीजिए कि आप इस लड़की से कभी न कहेंगे कि यह पशुपति की पत्नी है। आचार्य ने यह अंगीकार कर लिया। तभी से वह उस लड़की को अपने परिवार में शामिल करके उसका प्रतिपालन कर रहे हैं और उसके साथ तुम्हारे ब्याह की बात उससे छिपाये हुए हैं।

पशुपति—इस समय वह कन्या कहाँ है?

मनोरमा—मैं ही वह केशव की कन्या हूँ। जनार्दन शर्मा ही उनके आचार्य हैं।

पशुपति चैतन्य खो बैठे। उनका सिर चकराने लगा। उन्होंने मुख से कुछ न कहकर प्रतिमा के आगे साष्टांग प्रणाम किया। फिर उठकर मनोरमा को छाती से लगाने के लिये बढ़े। मनोरमा पहले ही की तरह हट गई। बोली—अभी नहीं—और भी बात है।

पशुपति—मनोरमा—राक्षसी! इतने दिन क्यों मुझे अँधेरे में रखा?

मनोरमा—क्यों? तुम क्या मेरी बात पर विश्वास करते?

पशुपति—मनोरमा, तुम्हारी बात पर मैंने कब अविश्वास किया है? और अगर मुझे विश्वास न होता तो मैं जनार्दन शर्मा से पूछ सकता था?

मनोरमा—जनार्दन क्या इस बात को प्रकट करते? वह तो अपने शिष्य से प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि इस रहस्य को प्रकट नहीं करेंगे।

पशुपति—तो फिर तुमसे क्यों कहा?

मनोरमा—उन्होंने मुझसे नहीं कहा। एक दिन एकान्त में अपनी ब्राह्मणी से वह यह बता रहे थे। दैवसंयोग से मैंने सुन लिया। और एक बात है। मैं विधवा यहाँ प्रसिद्ध हूँ। तुम मेरे कहने पर विश्वास कर सकते थे, पर और लोग क्यों विश्वास करते? लोगों के निकट निन्दनीय हुए बिना तुम मुझे कैसे ग्रहण करते?

पशुपति—मैं सब लोगों को एकत्र करके उनसे समझाकर कहता

मनोरमा—अच्छा, वही सही; किन्तु उस ज्योतिषी का फलादेश?

पशुपति—मैं ग्रहशांति कराता। खैर, जो होना था वह हो गया। अब अगर मैंने रत्न को पाया है, तो उसे अपने कंठ में धारण करूँगा—वहाँ से अलग नहीं करूँगा। तुम अब मेरा घर छोड़कर जा नहीं सकोगी।

मनोरमा ने कहा—यह घर छोड़ना होगा तुमको। पशुपति, आज जो मैं कहने आई थी, वह कहती हूँ, सुनो। यह घर छोड़ो। अपने राज्यलाभ की दुराशा छोड़ो।

अपने स्वामी के अहित की चेष्टा छोड़ो। यह देश छोड़कर चलो, हम काशीधाम की यात्रा करें। वहाँ मैं तुम्हारे चरणों की सेवा करके अपने जन्म को सफल और सार्थक करूँगी। जिस दिन हमारी आयु समाप्त होगी, उस दिन हम एकसाथ परमधाम की यात्रा करेंगे। अगर तुम यह स्वीकार करो तो मेरी तुम पर भक्ति अचल-अटल रहेगी। नहीं तो—

पशुपति—नहीं तो क्या?

तब मनोरमा ने मुख ऊपर उठाकर आँसू-भरे नेत्रों से प्रतिमा के सामने खड़े होकर, हाथ जोड़कर, गद्‌गद् कण्ठ से कहा—मैं शपथ करती हूँ कि तुमसे मेरी यह भेंट आख़री होगी—इस जन्म में फ़िर हमारी कभी भेंट न होगी।

पशुपति भी देवी के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। बोले—मैं भी शपथ करता हूँ मनोरमा, कि मेरे जीवित रहते तुम मेरा घर छोड़कर जाने नहीं पाओगी। मनोरमा, मैंने जिस राह में पैर बढ़ाया है, उस राह से लौटने का उपाय अगर होता तो मैं लौट पड़ता—तुमको लेकर, सर्वत्यागी होकर, काशी चल देता। किन्तु अब मैं बहुत दूर आगे बढ़ गया हूँ। अब फिरने का उपाय नहीं है। जो गाँठ मैंने डाली है, उसे अब खोल नहीं सकता। लोभ के सागर में डोंगी डाल दी है, अब उसे लौटा नहीं सकता। जो होने का था, वह हो गया। लेकिन इसी कारण क्या मैं अपने परम सुख से वंचित होऊँगा? तुम मेरी स्त्री हो। मेरे भाग्य में चाहे जो हो, मैं तुमको घरनी अवश्य बनाऊँगा। तुम यहाँ क्षणभर ठहरो, मैं अभी आता हूँ।

इतना कहकर पशुपति मंदिर के बाहर चले गये। मनोरमा के मन में सन्देह हुआ। वह चिन्तित अन्तःकरण से कुछ देर मंदिर के भीतर खड़ी रही। फिर एक बार पशुपति से विदा हुए विना वह जा नहीं सकी।

थोड़ी देर में ही पशुपति ने लौट आकर कहा—प्राणाधिके! आज अब तुम मुझे छोड़कर जा नहीं सकोगी। मैं जाने के सब दरवाज़े बंद कर आया हूँ।

मनोरमा चिड़िया की तरह पिंजड़े में बंद हो गई।

——:*:——

चतुर्थ परिच्छेद

यवन का दूत या यमराज का दूत ?

दिन पहर भर चढ़ा होगा, इसी समय नगर-निवासियों ने विस्मित नेत्रों से देखा, किसी अपरिचित के १७ घुड़सवार आदमी राजपथ नाँघते हुए राजभवन की ओर जा रहे हैं। उनके आकार-प्रकार और चेष्टा-इंगित देखकर नवद्वीप के लोग मुग्ध होकर धन्य-धन्य कहने लगे। उनके शरीर लम्बे-चौड़े और पुष्ट थे। उनके शरीर का रंग तपे सोने का-सा था। उनके चेहरे चौड़े, घनी काली दाढ़ी-मूछों से सुशोभित और रोबीले थे, नयन बड़े-बड़े थे और अंगारे की तरह चमक रहे थे। उनकी पोशाकें सादी और अनर्थक तड़क-भड़क से खाली थीं। उनका वेश सिपाहियाना था। सारे शरीर में हथियारों की बहार थी। नेत्रों की दृष्टि में दृढ़ प्रतिज्ञा झलक रही थी। और जिन सब सिन्धु-पार के अरब घोड़ों की पीठ पर वे सवार होकर जा रहे थे, वे भी कैसे खूब-सूरत और मन को हरनेवाले थे! पहाड़ की भारी शिलाओं के समान बड़े और ऊँचे डील-डौल के उन घोड़ों की गर्दनें चलते समय टेढ़ी हो-हो रही थीं। लगाम की रोक को वे बरदाश्त नहीं कर पा रहे थे। तेज़ी के गर्व से वे नाचते-से चल रहे थे। सवार भी कैसे सवारी में और उन घोड़ों को चलाने तथा सँभालने में निपुण थे। सहज ही उन अवरुद्ध आँधी-जैसे तेजस्वी घोड़ों को काबू में किये थे। देखकर गौड़ देश के निवासी लोग उनकी बहुत प्रशंसा करने लगे।

वे सत्रह सवार दृढ़ प्रतिज्ञा से दोनो होठ बाँधे चुपचाप राजमहल की ओर चले। कौतूहलवश किसी नगरवासी के कुछ पूछने पर उनके साथ चलनेवाला एक आदमी उनसे कह देता था कि ये यवनराजा के दूत हैं। वह आदम स्थानीय भाषा जानता था और उसी में उत्तर देता था। यही कहकर वे प्रान्तपाल और कोष्ठ-सिपाहियों से भी रास्ता पा गये; क्योंकि पशुपति की यही आज्ञा थी कि यवन-राज के दूतों को न रोका जाय। इस प्रकार वे निर्विघ्न नगर में प्रवेश कर सके थे।

सत्रहो घुड़सवार राजमहल के फाटक पर पहुँचे। वृद्ध राजा की शिथिलता और पशुपति के कौशल से राजभवन प्रायः रक्षकहीन था।

राजदरबार बर्खास्त हो चुका था। पुरी के भीतर केवल उसके भीतर रहनेवाले और लोग थे। थोड़े-से द्वारपाल द्वार की रक्षा कर रहे थे। एक द्वारपाल ने पूछा—तुम लोग किस लिये आये हो ?

यवनों ने उत्तर दिया—यवनराज के प्रतिनिधि के दूत हैं। गौड़राज से भेंट करेंगे।

द्वारपाल ने कहा—महाराजाधिराज गौड़ेश्वर इस समय महल के भीतर अन्तःपुर में गये हैं। इस समय भेंट न होगी।

यवनों ने निषेध न मानकर खुले फाटक के भीतर घुसना चाहा। सबसे पहले एक ठिंगने कद का, लम्बी भुजाओंवाला कुरूप यवन था। दुर्भाग्यवश द्वारपाल उसे रोकने के लिए बर्छा उठाकर सामने खड़ा हो गया। उसने कहा—पीछे लौटो, नहीं तो अभी मार डालूँगा।

"तो तू आप ही मर!" इतना कहकर उस क्षुद्रकाय यवन ने अपने हाथ की तलवार से उसके शरीर के दो टुकड़े कर दिए। द्वारपाल मर गया। तब अपने साथियों की ओर देखकर उस क्षुद्रकाय यवन ने कहा—अब तुम लोग अपना-अपना काम करो।

वैसे ही बिना कुछ कहे-सुने वे सोलहो अश्वारोही जोर से खिलजी की जय चिल्ला उठे। उन सोलहो सवारों ने कमर में बँधी म्यानों से तलवारें खींच लीं और वज्रपात के समान फुर्ती से शेष द्वारपालों पर टूट पड़े। द्वारपाल रणसज्जा में न थे, अकस्मात् आक्रमण होने पर कोई उद्योग या आत्मरक्षा की चेष्टा न कर सके। घड़ी भर में ही सब मार डाले गए।

तब उस ठिंगने यवन ने कहा—जिस जगह जिसे पाओ मार डालो। राजभवन और सारी पुरी अरक्षित है—वृद्ध राजा को भी मार डालो।

तब यवन घुड़सवार बिजली की तरह राजभवन के भीतर घुस पड़े। बालक, बूढ़े, स्त्री भी नहीं बचे, जिसे जहाँ पाया, काट डाला या बर्छे से छेद डाला। इसके बाद ही पुरी भर में कत्ले-आम मच गया। गौड़वासी लोग तुमुल आर्त्तनाद करते हुए इधर-उधर भागने लगे। वह घोर आर्त्तनाद अन्तःपुर में, जहाँ वृद्ध राजा लक्ष्मणसेन बैठे भोजन कर रहे थे; वहाँ पहुँचा। राजा का मुँह सूख गया। उन्होंने पूछा—क्या हुआ? क्या यवन आ गए?

भाग रहे पुरवासियों अर्थात् राजमहल के भीतर रहनेवालों ने कहा—यवन सब को मारकर अब आपकी हत्या करने आ रहे हैं।

मुँह में रखा हुआ कौर राजा के मुह से गिर पड़ा। उनका सूखा हुआ क्षीण शरीर जल के प्रवाह में पड़े हुए थपेड़े खा रहे बेंत के समान काँपने लगा। पास ही राजा की पत्नी बैठी थीं। उन्होंने देखा, राजा थाल के ऊपर गिर पड़ने को हैं।

उन्होंने जल्दी से राजा को उनका हाथ पकड़कर सँभाला। बोली—चिन्ता नहीं है, आप उठिए। इतना कहकर उनको हाथ पकड़कर उन्होंने खड़ा किया। राजा कल के पुतले की तरह उठ खड़े हुए।

रानी ने कहा—चिन्ता क्या है ? नाव पर सब सामान चला गया है। चलिए, हम खिड़की के रास्ते निकलकर सोनागाँव के लिए यात्रा करें।

इतना कहकर रानी राजा के विना धुले हुए हाथ को पकड़कर खिड़की की गुप्त राह से सुवर्णग्राम के लिए चल दीं।

सोलह साथी लेकर बन्दर के आकार वाले बख्तियार खिलजी ने गौड़ेश्वर की राजपुरी पर अधिकार कर लिया।

साठ वर्ष बाद यवन इतिहास-लेखक मिनहाजउद्दीन ने ऐसा ही लिखा है। इसमें सचाई कहाँ तक है, झूठ कितना है, यह कौन जाने ? जब मनुष्य के बनाए चित्र में सिंह को पराजित दिखाया जाता है, मनुष्य सिंह की मूछ उखाड़कर उसका अपमान करता दिखाया जाता है, तब यदि सिंह के हाथ में चित्र बनाने का काम होता तो कैसा चित्र अंकित होता ? यह सब जानते हैं। मनुष्य सिंह के आगे चूहा-सा जान पड़ता, इसमें संदेह नहीं। मंदभाग्य बंगभूमि सहज ही दुर्बल थी, उस पर शत्रु के हाथ में चित्रफलक ! ऐसा तो होगा ही चित्र।

पंचम परिच्छेद

जाल फटा

गौड़ेश्वर के महल में बैठते ही बख्तियार खिलजी ने धर्माधिकारी पशुपति के पास अपना आदमी भेजा। उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। उनके साथ यवन की सन्धि हुई थी, उसका फल फलने का समय उपस्थित था।

पशुपति इष्टदेवी अष्टभुजा को प्रणाम करके, कुपित मनोरमा से विदा होकर, कभी उल्लासित और कभी शंकित चित्त से यवन के निकट उपस्थित हुए। बख्तियार खिलजी ने उठकर आदर के साथ उन्हें सलाम किया और कुशल पूछी। पशुपति राजा के भृत्यों और पौरजनों के रक्त की नदी में पैर धोकर आये थे, सहसा कुछ उत्तर न दे सके।

बख्तियार खिलजी बड़ा चतुर था। वह उनके मन के भाव को भाँप गया। उसने कहा—पंडितजी महाराज, राजसिंहासन पर बैठने का रास्ता फूलों की सेज नहीं होता। इस राह में चलने पर बंधुओं के कटे सिर पर पैर रखकर ही जाना होता है।

पशुपति ने कहा—यह सच है। लेकिन जो लोग विरोधी हों उन्हीं का वध आवश्यक है। ये लोग तो निरीह हैं, इन्होंने तो विरोध भी नहीं किया।

बख्तियार ने कहा—आप क्या खून का दरिया देखकर अपने वादे की याद से दुखी हो रहे हैं? पछता रहे हैं?

पशुपति ने कहा—मैंने जो करना स्वीकार किया है, वह अवश्य करूँगा और महाशय भी अपने वादे को पूरा करेंगे, इसमें कोई संशय नहीं।

बख्तियार—बेशक। लेकिन सिर्फ मेरी एक प्रार्थना है।

पशुपति—फ़र्माइए।

बख्तियार—कुतुबुद्दीन ने गौड़ देश का शासनभार आपको सौंप दिया है। आज से आप बंगाल में बादशाह के प्रतिनिधि हुए। लेकिन बादशाह सलामत का इरादा या मंशा यह है कि इस्लामधर्म को माननेवाले के सिवा ग़ैरमजहब का कोई आदमी उनके राजकाज में शामिल नहीं हो सकेगा। आपको इस्लाम का मज़हब क़बूल करना होगा।

पशुपति का मुंह सूख गया। उन्होंने कहा—सन्धि के समय तो ऐसी कोई बात नहीं हुई थी?

बख्तियार—अगर नहीं हुई तो वह सिर्फ एक चूक भर है। और अगर यह बात नहीं भी उठाई गई तो आप सरीखे बुद्धिमान् आदमी ने जरूर अनुमान कर लिया होगा। क्योंकि ऐसा कभी नहीं हो सकता कि मुसलमान लोग बंगाल को फ़तेह करके ही फिर हिन्दू को राज दे दें।

पशुपति—मैं अपने को आपके निकट बुद्धिमान् नहीं प्रमाणित कर सका।

बख्तियार—अगर पहले नहीं समझा था तो अब समझ गये। आप इस्लाम क़बूल करने का पक्का इरादा कर लीजिए।

पशुपति (दर्प के साथ)—मैंने इरादा पक्का कर लिया है कि यवन-सम्राट के साम्राज्य के लिए भी मैं सनातनधर्म को छोड़कर नरकगामी न होऊँगा।

बख्तियार—यह आपका भ्रम है। आप जिसे सनातनधर्म कहते हैं, वह भूत की

पूजा-मात्र है। कुरान में बतलाया गया धर्म ही सच्चा धर्म है। महम्मद साहब को भजकर ही यह लोक और परलोक बनाइए।

पशुपति यवन की शठता को समझ गये। उसका मतलब इतना ही है कि काम निकालकर किसी बहाने से संधि को तोड़ दे। और भी समझा कि छल से न होगा तो बल से वह ऐसा करेगा। अतएव छली के साथ छल का सहारा न लेकर उन्होंने अच्छा नहीं किया। पशुपति ने क्षण भर सोचकर कहा—जो आज्ञा, मैं आज्ञा का पालन करूँगा।

बख्तियार भी पूरा चंट था। उसने पशुपति का इरादा समझ लिया। बख्तियार अगर पशुपति से अधिक चतुर न होता तो इतने सहज में गौड़ देश को जीत न सकता। बंगभूमि के भाग्य में यही लिखा है कि यह भूमि युद्ध से न जीती जायगी; चातुरी से ही जीती जायगी। चतुर क्लाइव ने दुबारा इस बात को प्रमाणित किया।

बख्तियार ने कहा—अच्छा-अच्छा। आज हम लोगों का शुभ दिन जुम्मा (शुक्रवार) है। ऐसे काम में देर करना ठीक नहीं। हमारे मौलाना मौजूद हैं; अभी आपको इस्लाम में दाखिल कर लेंगे।

पशुपति ने देखा, सर्वनाश उपस्थित है! उन्होंने कहा—केवल एक बार मुझे छुट्टी दीजिए, अपने परिवार को भी ले आऊँ; एकदम सपरिवार इस्लाम धर्म की दीक्षा लूँगा।

बख्तियार ने कहा—आप क्यों जाने-आने की तकलीफ़ उठायेंगे? मैं उन्हें लाने के लिए अपना आदमी अभी भेजता हूँ। आप इस पहरेदार के साथ जाकर आराम कीजिए।

पहरेदार ने आकर पशुपति का हाथ पकड़ा। पशुपति ने क्रुद्ध होकर कहा—यह क्या? मैं क्या क़ैदी बनाया गया?

बख्तियार ने कहा—फ़िलहाल यही बात है।

पशुपति राजभवन में बंदी बना लिये गये। मकड़े का जाला फट गया—उस जाले में केवल वही—पशुपति ही—फँस गये।

हमने पाठकों के निकट पशुपति को बुद्धिमान् कहकर उनका परिचय दिया है। पाठक महाशय कहेंगे कि जो आदमी शत्रु के ऊपर इतना विश्वास कर बैठा, कि सहायहीन होकर उसके द्वारा अधिकृत स्थान में प्रवेश करने में नहीं हिचका, वह

चतुर या बुद्धिमान् कहाँ है ? लेकिन पशुपति शत्रु पर विश्वास न करते तो क्या करते ? वह विश्वास न करते तो युद्ध करना होता। मकड़ा जाला फैलाता है, युद्ध नहीं करता।

उसी दिन रात को महावन से २०००० यवनों ने आकर नवद्वीप को घेर लिया। नवद्वीप-विजय पूरी हुई। जो सूर्य उस दिन अस्त हो गया, वह फिर उदय न हुआ। फिर क्या उदय न होगा ? उदय और अस्त होना तो प्रकृति का स्वाभाविक नियम है।

——:*:——

षष्ठ परिच्छेद

पिंजड़ा टूटा

जब तक पशुपति घर में थे, तब तक उन्होंने मनोरमा पर पूरी नजर रखी थी। जब वह बख्तियार से मिलने गये, तब उन्होंने घर के सब द्वार बंद करके शान्तशील को घर की रक्षा के लिए रख दिया।

पशुपति के जाते ही मनोरमा वहाँ से भागने का उद्योग करने लगी। उसने घर के हरएक कोठे में निकलने की राह खोजना शुरू कर दिया। भागने के लायक़ कोई भी राह खुली न देख पड़ी। बहुत ऊँचे पर कुछ झरोखे थे; किन्तु उन तक चढ़कर जाना कठिन था। उनके भीतर से मनुष्य की देह बाहर निकलने की संभावना नहीं थी। और वे धरती के फ़र्श से इतने ऊँचे थे कि उनसे धरती पर गिरकर हड्डियाँ चूर-चूर हो जाना ही सर्वथा संभव था। पर मनोरमा निकलने के लिए पागल हो रही थी। उसने झरोखे की राह से ही निकलने का इरादा कर लिया।

अतएव पशुपति के जाने के क्षण भर बाद ही मनोरमा ने पशुपति के शयन-कक्ष में जाकर पलँग को खड़ा किया और उससे ऊपर चढ़ गई। पलँग के ऊपर से झरोखे पर चढ़ना सहज हो गया। पलँग से झरोखे तक जाकर मनोरमा ने पहले दोनो हाथ बाहर निकाले, फिर अपना सिर बाहर किया।

बाद को छाती तक निकाल दी। झरोखे के पास ही बाग़ था। उसमें हाथ के पास ही आम के वृक्ष की एक छोटी डाल देख पड़ी। मनोरमा ने हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ लिया। फिर ज़ोर लगाकर पीछे का धड़ भी बाहर खींच लिया और डाल के सहारे भूलने लगी। कोमल शाखा उसके बोझ से नीचे झुक गई। तब भूमि से कुछ ही ऊपर तक उसके पैर पहुँच गये। मनोरमा ने डाल छोड़ दी और अनायास, बिना तनिक भी चोट खाये, वह धरती पर पहुँच गई। नीचे आते ही तनिक भी अपेक्षा न करके वह जनार्दन के घर की ओर चल दी।

सप्तम परिच्छेद

यवन-विप्लव

उसी दिन अर्द्धरात्रि में नवद्वीप नगर विजय से उन्मत्त हो रही यवन-सेना के अत्याचार से, तूफ़ान के थपेड़े खाकर ऊँची-ऊँची लहरें फेंकनेवाले सागर की तरह, क्षुब्ध-चंचल हो उठा। राजपथ में सैकड़ों घुड़सवार, सैकड़ों पैदल सिपाही, सैकड़ों योद्धा जो तलवार, भाले, तीर-कमान सँभाले थे, छा गये। सेना बल-हीन राजधानी के नागरिक डरकर घरों में घुस रहे। दरवाजे बंदकर भय के कारण काँपते हुए इष्टदेवता का नाम जपने लगे।

यवन लोगों ने रात में, सड़क पर, जिन आश्रयहीन अभागे दो-चार जनों को पाया, उन्हें भालों से छेद डाला और उसके बाद बंद दरवाज़ों पर हमला बोल दिया। कहीं दरवाज़ा तोड़कर, कहीं दीवाल फाँदकर और कहीं शठता-पूर्वक डरे हुए गृहस्थ को जीवन की आशा देकर वे घरों के भीतर घुसने लगे। घर में घुसकर पहले गृहस्थ का सर्वस्व लूटते, उसके बाद स्त्री, पुरुष, वृद्ध, बालक-बालिका सभी का सिर काट डालते—यही उनका क्रम नियम-पूर्वक चलने लगा। केवल जवान औरतों के लिए दूसरा नियम था।

रक्त से सब गृहस्थों के घर प्लावित होने लगे। राजपथ पर रुधिर की कीच हो गई। रक्त से यवन-सेना नहा गई, सैनिकों के वस्त्र और शरीर रक्त से रँग गये। लूटी हुई सामग्री के बोझ से घोड़ों की पीठ और आदमियों के कंधे दुखने लगे। भाले की नोक पर टँगे हुए ब्राह्मणों के मुंड भयानक भाव व्यक्त करने लगे। ब्राह्मणों के यज्ञोपवीत घोड़ों के गलों में झूलने लगे। सिंहासन पर स्थित शालग्राम-शिलाएँ यवनों के पैर की ठोकर से इधर-उधर लुढ़कने लगीं।

भयानक आर्त्तनाद और सिपाहियों के गर्जन से रात्रि का आकाश गूँजने लगा। घोड़ों की टापों का शब्द, सैनिकों का कोलाहल, हाथियों की चिंघार, यवनों की जयध्वनि, उस पर पीड़ितों का आर्त्तनाद, माता का रोना, बच्चों का चीखना-चिल्लाना, वृद्धों की करुणा-याचना और युवतियों का बिलखना कान फाड़े डाल रहा था।

पर जिन वीर पुरुष को माधवाचार्य इतने यत्न से यवन-दमन के लिए इतनी दूर ले आये थे, वह इस समय कहाँ हैं ?

इस भयानक प्रलय के समय हेमचन्द्र रण के लिए उन्मुख या उद्यत नहीं हैं। अकेले युद्ध करके वह क्या कर सकते हैं ? न उनके पास सेना है, न कोई सहायक।

हेमचन्द्र इस समय अपने शयनकक्ष में अकेले पलँग पर लेटे थे। नगर के आक्रमण का कोलाहल उन्हें सुन पड़ा। उन्होंने अपने चाकर दिग्विजय से पूछा—यह काहे का शोर है ?

दिग्विजय ने कहा—यवन-सेना ने नगर पर आक्रमण कर दिया है।

हेमचन्द्र चौंक पड़े। उन्होंने बख्तियार के द्वारा राजमहल पर अधिकार और राजा के भागने का वृत्तान्त नहीं सुना था। दिग्विजय ने यह सब वृत्तान्त उन्हें सुनाया।

हेमचन्द्र ने पूछा—नागरिक लोग क्या कर रहे हैं ?

हेमचन्द्र ने कुटीर के भीतर खोजकर देखा, एक कलसी में जल भरा है। कोई पात्र न होने के कारण अंजली में लाकर उसे पानी पिलाना चाहा।

ब्राह्मण ने कहा—ना ! ना ! जल नहीं पियूँगा ? यवन के हाथ का जल नहीं पियूँगा।

हेमचन्द्र ने कहा—मैं यवन नहीं हूँ, मैं हिन्दू हूँ—क्षत्रिय हूँ। मेरे हाथ का पानी तुम पी सकते हो। मेरी बातचीत से तुम नहीं समझ पा रहे हो कि मैं यवन नहीं हूँ ?

ब्राह्मण ने ज़ल पिया। हेमचद्र ने कहा—तुम्हारा और क्या उपकार मैं करूँ ?

ब्राह्मण ने कहा—और क्या करोगे ? और क्या ? मैं मर रहा हूँ ? मर रहा हूँ ? जो मरनेवाला है, उसका क्या उपकार करोगे ?

हेमचन्द्र ने कहा—तुम्हारे कोई है ? उसे तुम्हारे पास ले आऊँ ?

ब्राह्मण ने कहा—और कौन है ?—कौन है ? बहुत हैं। उनमें वही राक्षसी—उसी राक्षसी से कहना—कहना—मेरे—अप—अपराध का बदला मिल गया ?

हेमचन्द्र—वह कौन है ? किससे कहूँगा ?

ब्राह्मण ने कहा—कौन ?—वही—पिशाचिन ? पिशाचिन को तुम नहीं जानते ? पिशाचिन का नाम मृणालिनी है—मृणालिनी—मृणालिनी ? मृणालिनी —पिशाची ?

ब्राह्मण और अधिक कराहने—आर्त्तनाद करने लगा। हेमचन्द्र उसके मुख से मृणालिनी का नाम सुनकर चौंक पड़े। पूछा—मृणालिनी तुम्हारी कौन होती है ?

ब्राह्मण ने कहा—मृणालिनी कौन होती है ? कोई नहीं—वह मेरा काल है।

हेमचन्द्र ने पूछा—मृणालिनी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?

ब्राह्मण ने कहा—पूछते हो—बिगाड़ा है ? क्या किया है ?—कुछ नहीं। मैंने—मैंने उसकी दुर्दशा की, उसी का बदला पाया।

हेमचंद्र—तुमने उसकी क्या दुर्दशा की ?

ब्राह्मण—अब मुझसे बोला नहीं जाता। पानी पिलाओ।

हेमचंद्र ने फिर उसके मुख में पानी डाला। ब्राह्मण पानी पीकर कुछ स्वस्थ हुआ। तब हेमचंद्र ने उससे पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ?

ब्राह्मण—व्योमकेश।

हेमचंद्र के नेत्रों से चिनगारियाँ निकल पड़ीं। दाँतों से होंठ चबाने लगे। हाथ के बर्छे को मुट्ठी ने कस लिया। मगर फिर वैसे ही शान्त होकर उन्होंने कहा—तुम कहाँ के रहनेवाले हो ?

ब्राह्मण—गौड़ के। गौड़ नहीं जानते ? मृणालिनी हमारे घर में रहती थी।

हेमचन्द्र—फिर क्या हुआ ?

ब्राह्मण—इसके बाद—इसके बाद और क्या ! उसके बाद ही तो मेरी यह दशा हुई—मृणालिनी पापिष्ठा है। बड़ी निर्दयी है। मेरी ओर फिरकर भी नहीं देखा। क्रोध करके मैंने अपने पिता से उसके नाम कलंक लगाया। पिता ने बिना दोष के उसे घर से निकाल दिया। राक्षसी—राक्षसी हम लोगों को छोड़ गई।

हेमचन्द्र—तो फिर तुम उसे गाली क्यों देते हो ?

ब्राह्मण—क्यों ?—क्यों ? गाली—गाली देता हूँ ? मृणालिनी मुझे फिरकर देखती न थी—मैं-मैं—उसे देखकर—जीता-जीता था। वह चली आई—तभी से मैंने अपना सब कुछ तज दिया। उसके लिए किस देश—कौन-से देश नहीं गया—कहाँ उस पिशाची को नहीं खोजा ? गिरिजाया—भिखारी की लड़की—उसकी मौसी ने कहा—वह नवद्वीप गई है। नवद्वीप में—यहाँ—आया, पता नहीं लगा। यवन—यवन के हाथ से मरा—उस राक्षसी के लिए प्राण दिये—उससे भेंट हो तो कहना—मेरे पाप का फल मुझे मिला।

आगे व्योमकेश के मुँह से बोल न निकला। वह परिश्रम से एकदम निर्जीव-सा हो पड़ा। बुझता हुआ दीपक बुझ गया। क्षण भर बाद विकट मुखभंगी करके व्योमकेश मर गया।

हेमचन्द्र फिर वहाँ नहीं ठहरे। फिर यवनों का वध नहीं किया। किसी तरह राह तय करके अपने डेरे की ओर चले।

अष्टम परिच्छेद

मृणालिनी का सुख क्या है ?

जहाँ बावली की सीढ़ी पर हेमचन्द्र मृणालिनी को व्यथित करके छोड़ गये थे, उसी जगह अब तक बैठी थी। पृथ्वी पर और कहीं जाने के लिए उसे स्थान नहीं था—सब जगह वह एक तरह से बेघर थी—सब जगह बराबर थी। रात बीत गई, सवेरा हुआ। गिरिजाया ने बार-बार बुलकारा, पर मृणालिनी ने कुछ उत्तर नहीं दिया, सिर झुकाये बैठी रही। नहाने-खाने का समय हुआ। गिरिजाया ने ले जाकर उसे स्नान कराया। नहाकर मृणालिनी गीले कपड़े पहने वहीं बैठी रही। गिरिजाया को भूख लगी; किन्तु वह लाख कोशिश करके भी मृणालिनी को भोजन करने के लिए उठा न सकी। तब पास के जंगल से वह कुछ फल-फूल ढूँढ़ लाई और मृणालिनी के आगे खाने के लिए रखे, मृणालिनी ने केवल उन्हें छू भर लिया। उसका वह प्रसाद गिरिजाया ने भोजन किया—क्षुधा के अनुरोध से मृणालिनी को छोड़ कर कहीं भोजन की खोज में नहीं गई।

इस तरह पूर्व दिशा से निकलकर सूर्यनारायण मध्य आकाश में पहुँचे, फिर मध्य आकाश से पश्चिम दिशा में ढल पड़े। सन्ध्या हुई। गिरिजाया ने देखा कि तब भी मृणालिनी के घर लौटने के लक्षण नहीं देख पड़ते। गिरिजाया विशेष व्यग्र हो उठी। पहली रात जागकर बिताई है—इस रात को भी जागरण के आसार नज़र आ रहे हैं। लेकिन गिरिजाया ने कुछ नहीं कहा—घास-फूस और पत्ते इकट्ठा करके सीढ़ी के ऊपर ही अपने लिए सोने का प्रबन्ध करने लगी। उसका अभिप्राय समझकर मृणालिनी ने कहा—तुम घर जाकर सोओ।

गिरिजाया ने मृणालिनी की बात सुनी तो आनन्दित हुई। बोली—मैं भी साथ ही चलूँगी।

मृणालिनी ने कहा—तुम चलो, मैं भी थोड़ी देर में आ जाऊँगी।

गिरिजाया ने कहा—मैं तब तक अपेक्षा करूँगी। [illegible] बिछाकर सोने में हानि क्या है? लेकिन [illegible] जाऊँ तो कहूँ—राजकुमार के साथ संबंध तो जन्मभर के लिए टूट गया—फिर इस [illegible] के [illegible] में हम क्यों कष्ट उठावें।

मृणालिनी ने शान्तभाव से कहा—गिरिजाया, हेमचन्द्र के साथ मेरा संबंध इस जन्म में नहीं मिट सकता। मैं कल भी हेमचन्द्र की दासी थी और आज भी उनकी दासी हूँ।

गिरिजाया को बड़ा क्रोध आया—वह उठकर बैठ गई। बोली—अच्छा, कहा मालकिन! तुम अब भी कहती हो कि तुम उस नीच की दासी हो! तुम अगर उसकी दासी हो तो मैं जाती हूँ—मेरी अब यहाँ जरूरत नहीं है।

मृणालिनी बोली—गिरिजाया, यदि हेमचन्द्र ने तुम्हें पीड़ित किया हो तो तुम अन्यत्र जाकर उनकी निन्दा करना। हेमचन्द्र ने मुझ पर कोई अत्याचार नहीं किया—मैं क्यों उनकी निन्दा सहूँगी? वह राजा के पुत्र और मेरे स्वामी । उनको नीच न कहना।

गिरिजाया का क्रोध और बढ़ गया। बड़े यत्न से रची हुई उस पर्णशय्या को वह छिन्न-भिन्न करके फेंकने लगी। बोली—नीच न कहूँगी! —एक बार कहूँगी! (कहकर शय्या के कुछ पत्ते दर्प के साथ जल में फेंक दिये)—एक बार नहीं, दस बार कहूँगी। (फिर पत्ते नोचकर फेंकती है) —सौ बार कहूँगी। (पत्ते फेंकती है)—हज़ार बार कहूँगी।

इसी तरह शय्या के सब पत्ते और घास-फूस जल में गया।

गिरिजाया कहने लगी—नीच न कहूँगी? लाख बार कहूँगी! किस दोष के लिए उन्होंने तुम्हारा इतना तिरस्कार किया? अपमान किया?

मृणालिनी—यह मेरा ही दोष है। मैं समझाकर अच्छी तरह सब बात उनसे कह नहीं पाई। क्या कहते क्या कह दिया।

गिरिजाया—मालकिन! अपना माथा छूकर देखो।

मृणालिनी ने माथे को हाथ से टटोला।

गिरिजाया—क्या देखा?

मृणालिनी—फूला है, दर्द होता है।

गिरिजाया—क्यों यह हुआ?

मृणालिनी—मुझे याद नहीं है।

गिरिजाया—मैं बताती हूँ। तुम हेमचन्द्र के कंधे पर सिर रखे थीं—वह तुमको ढकेलकर चले गये। पत्थर से टकराकर तुम्हारा माथा फूल गया है।

मृणालिनी ने क्षण भर सोचकर देखा; किन्तु कुछ याद न आया। बोली—याद नहीं आता। जान पड़ता है, मैं आप ही गिर पड़ी होऊँगी।

गिरिजाया विस्मित होकर बोली—मालकिन, इस संसार में आप ही सुखी हैं।

मृणालिनी—क्यों?

गिरिजाया—आपको क्रोध नहीं आता।

मृणालिनी—बेशक मैं ही सुखी हूँ; किन्तु इसके लिए नहीं।

गिरिजाया—फिर काहे के लिए?

मृणालिनी—हेमचन्द्र के दर्शन मिल गये हैं, इसलिए।

——:※:——

नवम परिच्छेद

स्वप्न

गिरिजाया ने कहा—अब घर चलो।

मृणालिनी ने पूछा—नगर में यह काहे का शोरगुल और हलचल मची है?

उस समय यवनसेना नगर को लूट रही थी, नागरिकों की हत्या कर रही थी।

तुमुल कोलाहल सुनकर दोनो शंकित हो उठीं। गिरिजाया ने कहा—चलो, अभी सावधान होकर यहाँ से चल दें।

किन्तु दोनो जनी राजमार्ग तक पहुँची थीं कि उन्होंने देखा, आगे जाने का कोई उपाय ही नहीं है। लाचार होकर लौट पड़ीं और उसी बावली की सीढ़ी पर आकर बैठ गईं।

गिरिजाया ने कहा—अगर यहाँ वे लोग आ गये ?

मृणालिनी चुप रही। गिरिजाया आप ही कहने लगी—वन के अँधेरे में ऐसी जगह छिप रहेंगे, जहाँ कोई भी हमें देख न पावेगा।

दोनो आकर सीढ़ी के ऊपर बैठी रहीं।

मृणालिनी ने मुरझाये हुए मुख से कहा—गिरिजाया, जान पड़ता है, सचमुच मेरा सर्वनाश उपस्थित है।

गिरिजाया—सो क्या ?

मृणालिनी—यह जो अभी एक घुड़सवार गया है, यह हेमचन्द्र ही हैं। सखी, नगर में घोर युद्ध हो रहा है, मार-काट चल रही है। अगर मेरे निःसहाय स्वामी उस युद्ध में गये, तो न जाने किस विपत्ति में पड़ जायँगे।

गिरिजाया कोई उत्तर नहीं दे सकी। उसे नींद आ रही थी। कुछ देर बाद मृणालिनी ने देखा, गिरिजाया सो गई है।

मृणालिनी भी एक तो आहार-निद्रा छोड़ देने के कारण आज दुर्बल हो रही थी, उस पर मानसिक यंत्रणा भोग रही थी, अतएव नींद आये विना शरीर का काम नहीं चल सकता था। उसे भी तंद्रा आ गई। नींद में वह सपना देखने लगी। देखा कि हेमचन्द्र अकेले ही सबसे युद्ध करके विजयी हुए हैं। मृणालिनी जैसे विजयी वीर को देखने के लिए राजमार्ग पर खड़ी थी। राजमार्ग में हेमचन्द्र के आगे-पीछे कितने ही हाथी, घोड़े और पैदल सिपाही जा रहे हैं। मृणालिनी को जैसे वह सेना की लहर छोड़कर, पद-दलित

करती चली गई। तब हेमचन्द्र ने अपनी अरबी जाति की घोड़ी से उतर कर, हाथ पकड़कर उसे उठाया। मृणालिनी ने जैसे हेमचन्द्र से कहा—"प्रभु, बहुत कष्ट और मानसिक वेदना मैंने पाई है। दासी को अब छोड़कर न जाना।" हेमचन्द्र ने जैसे कहा—"अब कभी तुमको नहीं छोड़ूँगा।" उस कंटस्वर से जैसे उसकी नींद टूट गई और जागकर भी उसने सुना—"अब कभी तुमको नहीं छोड़ूँगा।" मृणालिनी ने आँखें खोलकर जो देखा, उस पर उसे विश्वास नहीं हुआ। उसने फिर ग़ौर से देखा, सचमुच हेम चन्द्र उसके सामने खड़े हैं। हेमचन्द्र कह रहे हैं—और एक बार क्षमा करो—अब कभी तुमको नहीं छोड़ूँगा।

निरभिमानिनी, निर्लज्ज मृणालिनी ने फिर उनके गले से लगकर उनकी छाती पर सिर रख दिया।

——:※:——
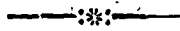
दशम परिच्छेद

प्रेम, अनेक प्रकार का

आनन्द के आँसुओं से मृणालिनी का वस्त्र भीग गया। हेमचन्द्र मृणालिनी का हाथ पकड़कर अपने उपवन के डेरे की ओर चले। हेमचन्द्र एक बार अपमानित, तिरस्कृत, व्यथित करके मृणालिनी को छोड़ गये थे। फिर आप ही आकर उसका हाथ पकड़ा और आदर किया—यह देखकर गिरिजाया को विस्मय हुआ। किन्तु मृणालिनी से इस संबंध में कोई प्रश्न उसने नहीं किया, कोई बात नहीं कही। आनन्द के अतिरेक से विवश होकर आँचल से आँसू पोंछती हुई पीछे-पीछे चली। गिरिजाया को पुकारना या बुलाना नहीं पड़ा, वह स्वयं कुछ फ़ासले से पीछे-पीछे जाने लगी।

उपवन-वाटिका में मृणालिनी के आगे आने पर हेमचन्द्र और मृणालिनी, दोनों बहुत दिनों से संचित अपने हृदय की बातें एक दूसरे से कहने

लगे। तब हेमचन्द्र ने, जिस-जिस घटना से उनके मन में मृणालिनी के ऊपर खीझ और क्रोध आया था और जिस-जिस कारण से वह भ्रम दूर हुआ, वह क्रोध शान्त हो गया, यह सब विस्तार से कह सुनाया। मृणालिनी ने भी जिस प्रकार हृषीकेश का घर छोड़ा था, जिस प्रकार नवद्वीप आई थी, सो सब वृत्तान्त वर्णन किया। तब दोनो, दोनो के आगे उस समय के अपने-अपने मन का भाव व्यक्त करने लगे। तब दोनो ही भविष्य के संबंध में कितनी ही कल्पनाएँ करने लगे—कितनी ही नयी-नयी प्रतिज्ञाएँ और वादे करने लगे। तब दोनो ही कितनी ही बेकार की बातें अति प्रयोजनीय बातों की तरह आग्रह के साथ कहने-सुनने लगे। दोनो ने ही कितनी बार ही उमड़ रहे आँसुओं को बड़ी कठिनाई से रोका। दोनो जने कितनी ही बार एक दूसरे के मुख की ओर देखकर अनर्थक मधुर हँसी हँसे। उस हँसी का अर्थ यह था कि हम कितने सुखी हैं। और जब चिड़ियाँ प्रभात के उत्सव की सूचना देती हुई चहक उठीं, तब कितनी ही बार दोनो ने ही विस्मित होकर मन में सोचा, अरे आज रात्रि इतनी जल्दी क्यों बीत गई? कैसे बीत गई? और उस नगर के भीतर यवन-विप्लव का जो कोलाहल उच्छ्वसित सागर की लहरों की गर्ज की तरह उठ रहा था, वह इन दोनों के हृदयसागर की लहरों के शब्द में डूब गया।

उपवन-गृह में एक जगह और एक कांड हो रहा था। दिग्विजय अपने स्वामी हेमचन्द्र की आज्ञा के अनुसार रात्रि-जागरण करके घर की रक्षा कर रहा था। मृणालिनी को लेकर हेमचन्द्र जब घर में आये तो उसने देखते ही मृणालिनी को पहचान लिया। मृणालिनी उसके लिए अपरिचित नहीं थी। जिस कारण से और जिस तरह वह परिचित थी, सो क्रमशः आगे लिखा जायेगा। मृणालिनी को देखकर दिग्विजय को कुछ विस्मय अवश्य हुआ; किन्तु पूछने की संभावना या मौका न था। क्या करे? क्षण भर बाद गिरिजाया भी आ गई। उसे देखकर दिग्विजय ने अपने मन में कहा—समझ गया, ये दोनो जनी गौड़ से यहाँ हम दोनों जनों को देखने आई हैं। मालिकिन युवराज को देखने आई हैं और यह गिरिजाया मुझे देखने आई है। यह सोचकर दिग्विजय ने एक बार अपनी मूछें मरोड़ीं और

दाढ़ी पर हाथ भी फेरा । मन में सोचा, क्यों न आती ! फिर मन में कहा, लेकिन यह छोकरी बड़ी ही बदजात है । एक दिन भी, एक बार भी अच्छी तरह मुझसे नहीं बोलती। तब फिर इसके मुझे देखने के मतलब से यहाँ आने की क्या संभावना है ? चाहे जो हो, एक बार परीक्षा करके देखा जाय । रात तो समाप्त ही हो गई है, अब मैं जरा किसी जगह इससे छिपकर जाकर सोता हूँ । देखूँ, प्यारी मुझे खोज लेती है कि नहीं ?—यह सोचकर दिग्विजय अलग-थलग एक एकान्त स्थान में जाकर लेट रहा । गिरिजाया ने दूर से यह देख लिया।

तब गिरिजाया अपने मन में सोचने लगी—मैं तो मृणालिनी की दासी हूँ । मृणालिनी इस घर की मालकिन हुई अथवा कुछ दिन में होंगी—तब तो इस घर का कामकाज करने का अधिकार मेरा ही है।

इस तरह मन को प्रबोध देकर गिरिजाया घर से एक झाड़ू ढूँढ लाई और जिस कोठरी में दिग्विजय जाकर सोया था, उसी के भीतर जा पहुँची । दिग्विजय आँखें मूँदे पड़ा था, पैरों की चाप पाकर उसने समझ लिया कि गिरिजाया आ रही है । वह मन में बड़ा प्रसन्न हुआ । सोचा, तब तो गिरिजाया उसे सचमुच प्यार करती है । देखें गिरिजाया क्या कहती है ? —यह सोचकर दिग्विजय आँखें बन्द ही किये पड़ा रहा।

अकस्मात् उसकी पीठ पर दनादन झाड़ू की मार पड़ने लगी। गिरिजाया चिल्लाकर कहने लगी—अरे राम ! देखो घर में तमाम कूड़ा-कचरा जमा है—यह क्या है ? एक आदमी है ! क्या चोर तो नहीं है ? मर मुए ! राजा के घर में चोरी करने आया है !

इतना कहकर फिर झाड़ू दिग्विजय की पीठ पर फटकारी । दिग्विजय की पीठ जैसे चकनाचूर हो गई ।

दिग्विजय ने चीखकर कहा—अरे गिरिजाया, ठहर-ठहर ! चोर नहीं, मैं हूँ—मैं !

गिरिजाया—मैं! अरे तू है, इसी से तो झाड़ू की मार से बिछाये देती हूँ।

इतना कहकर फिर झाड़ू की दनादन बौछार करने लगी।

दिग्विजय ने व्याकुल होकर कहा—दोहाई! दोहाई! गिरिजाया? मैं हूँ दिग्विजय!

गिरिजाया—चोरी करने आया है और कहता है—मैं हूँ दिग्विजय! दिग्विजय कौन है रे मर्दुए?

झाड़ू की तेज मार किसी तरह रुकती ही नहीं।

अब की दिग्विजय ने कातर होकर कहा—गिरिजाया! मुझे क्या तुम भूल गईं?

गिरिजाया ने कहा—तुझसे मेरी किस पीढ़ी में जान-पहचान थी रे मर्दुए!

दिग्विजय ने देखा, जान बचाना मुश्किल है—रण में पीठ दिखाना ही नेक सलाह है। तब दिग्विजय और कोई उपाय न देखकर जान लेकर कोठरी से निकलकर बेतहाशा भागा। गिरिजाया भी झाड़ू हाथ में लिये उसके पीछे दौड़ी।

——:※:——

एकादश परिच्छेद

पूर्व-परिचय

सबेरे हेमचन्द्र माधवाचार्य की खोज में चले गये। गिरिजाया आकर मृणालिनी के पास बैठी।

गिरिजाया ने मृणालिनी के दुःख में साथ दिया था; सहृदयता के साथ उसके बुरे दिनों में, दुःख के समय उसके दुःख की कहानी सारी सुनी थी। आज सुख के दिन वह क्यों न उसके सुख में भाग ले? आज वैसी

ही सहृदयता के साथ उसके सुख की बातें क्यों न सुनेंगी ? गिरिजाया भिखारिन है, और मृणालिनी एक महाधनी सेठ की कन्या ! दोनो में सामाजिक प्रभेद कितना बड़ा है ? किन्तु दुःख के दिनों में गिरिजाया ही मृणालिनी की एकमात्र मित्र, एकमात्र साथिन थी। ऐसे समय भिखारिन और राजपुत्र की पत्नी या महाधनी सेठ की कन्या का भेद या अन्तर नहीं रहता ? आज इसी से गिरिजाया मृणालिनी के हृदय के सुख की हिस्से-दारिन हुई।

जो बातचीत चल रही थी, उससे गिरिजाया को विस्मय भी हो रहा था और प्रसन्नता भी। उसने मृणालिनी से पूछा—तो इतने दिन तक तुमने यह बात—यह रहस्य प्रकट क्यों नहीं किया ?

मृणालिनी ने कहा—अब तक राजपुत्र का निषेध था, इसलिए मैंने प्रकट नहीं किया। अब उन्होंने प्रकट करने की अनुमति दे दी है, इसीलिए प्रकट करती हूँ।

गिरिजाया—मालकिन, सब बातें बताओ ना ? मुझे सुनकर बड़ी तृप्ति होगी।

तब मृणालिनी कहने लगी—मेरे पिता एक बौद्ध-मतावलंबी सेठ थे। वह बड़े धनी और मथुरा के राजा के प्रिय व्यक्ति थे। मथुरा की राजकुमारी की मैं सहेली थी। मैं एक दिन मथुरा की राजकन्या के साथ नाव पर बैठकर यमुना में जलविहार करने गई थी। वहाँ अकस्मात् जोर की आँधी आई और पानी बरसने लगा। नाव पानी में डूब गई। राजकन्या वगैरह जो थीं, उन्हें तो रक्षकों और माँझियों ने बचा लिया मैं प्रवाह में बह चली। दैवयोग से एक राजकुमार उस समय अपनी नाव पर नदी की सैर कर रहे थे। उन्हें तब मैं जानती-पहचानती नहीं थी। वही हैं यह हेमचन्द्र। वह भी आँधी-पानी के भय से अपनी नाव किनारे लगा रहे थे। जल के ऊपर मेरे बाल उन्हें देख पड़े। वह स्वयं जल में कूद पड़े और मुझे ऊपर निकाला। उस समय मैं अचेत थी। हेमचन्द्र मेरा परिचय नहीं जानते थे। वह उन दिनों मथुरा में

तीर्थदर्शन को आये थे। अपने डेरे में मुझे ले जाकर मेरी सेवा-सुश्रूषा की। जब मुझे होश आया, तब उन्होंने मेरा परिचय पूछकर मुझे मेरे पिता के घर भेजने का उद्योग किया। किन्तु तीन दिन तक वह आँधी-पानी का तूफ़ान थमा ही नहीं। ऐसा दुर्दिन हो गया कि कोई घर के बाहर निकल नहीं सकता था। इसी लिए तीन दिन तक हम दोनो को एक ही घर में एक साथ रहना पड़ा। दोनो को दोनो का परिचय प्राप्त हुआ। केवल कुल-परिचय नहीं, अन्तःकरण का, स्वभाव का परिचय भी। उस समय मेरी अवस्था केवल पंद्रह वर्ष की थी। किन्तु उसी अवस्था में मैं उनकी दासी हो गई। उस कच्ची उम्र में जब कुछ मैं नहीं जानती थी। मैं हेमचन्द्र को देवता की तरह देखने और भक्ति करने लगी। उन्होंने जो कुछ कहा, वह मुझे वेद-पुराण-शास्त्र से बढ़कर जान पड़ने लगा। उन्होंने कहा—"ब्याह कर लो।" इसी लिए मुझे भी जान पड़ा कि यह अवश्य करना चाहिए। चौथे दिन दुर्योग को शान्त हुआ देखकर दिग्विजय ने सब उद्योग कर दिया! तीर्थयात्रा में राजकुमार के कुल-पुरोहित साथ में थे। उन्होंने हमारा ब्याह करा दिया।

गिरिजाया—कन्यादान किसने किया?

मृणालिनी—अरुन्धती नाम की मेरी एक पुरानी नातेदार थीं। वह नाते में मेरी माँ की बहन अर्थात् मौसी लगती थीं। उन्होंने बचपन से मेरा लालन-पालन किया था। वह मुझ पर अत्यन्त स्नेह रखती थीं। मेरे सब उत्पातों को सहती थीं। मैंने उनका नाम लिया। दिग्विजय ने किसी को बहाने से अन्तःपुर के भीतर भिजवाकर उन्हें बाहर बुला लिया, और फिर कोई बहाना बनाकर उनको हेमचन्द्र के घर ले आया। अरुन्धती अपने मन में जानती थीं कि मैं यमुना में डूब गई। मुझे जीवित देखकर उन्हें इतनी खुशी हुई कि मेरी किसी बात से वह असन्तुष्ट नहीं हुईं। मैंने जो कहा, वही मंजूर कर लिया। उन्होंने ही कन्यादान किया। ब्याह के बाद मौसी के साथ मैं बाप के घर गई। सब बातें सच-सच कहकर केवल ब्याह की बात

मैंने छिपा ली । मैं, हेमचन्द्र, दिग्विजय, कुल-पुरोहित और अरुन्धती मौसी के सिवा इस व्याह की बात और कोई नहीं जानता था । आज तुमने जानी है ।

गिरि०—माधवाचार्य नहीं जानते ?

मृणालिनी—ना । वह जानते तो ग़ज़ब हो जाता । तब मगधराज अवश्य सुन पाते । मेरे पिता बौद्ध हैं और महाराज बौद्धों के घोर शत्रु हैं ।

गिरि०—अच्छा तुम्हारे बाप अगर तुम्हें अब तक कुमारी ही जानते थे तो अब तक, इतनी अवस्था तक, तुम्हारा व्याह उन्होंने क्यों नहीं किया ?

मृणा०—इसमें मेरे बाप का कोई दोष नहीं है । उन्होंने बहुत यत्न किया, किन्तु बौद्ध सुपात्र पाना बड़ा कठिन है । कारण बौद्ध धर्म का इस देश मे प्रायः लोप हो गया है । पिता बौद्ध दामाद चाहते हैं, अथच यह भी चाहते हैं कि वह सुपात्र हो । ऐसा एक लड़का मिला भी था—मगर मेरा व्याह हो जाने के बाद । व्याह का दिन ठीक हो गया था—सब तैयारी भी हो चुकी थी । लेकिन मैंने उस समय बुखार पैदा कर लिया । उस लड़के ने अन्यत्र व्याह कर लिया ।

गिरिजाया—जानबूझकर इच्छा पूर्वक बुखार बुला लिया था क्या ?

मृणालिनी—हाँ इच्छापूर्वक । हमारे बाग में एक कुआँ है । उसके जल को कोई इस्तेमाल नहीं करता । छूता तक नहीं । वह पानी पीने से या उसमें नहाने से जरूर ही बुखार आ जाता है । मैंने छिपाकर रात को उसके पानी से नहा लिया था ।

गिरिजाया—फिर कहीं व्याह का उद्योग होने पर फिर वही करतीं ?

मृणालिनी—इसमें क्या संदेह है ? नहीं तो हेमचन्द्र के पास भाग जाती ।

गिरि०—मथुरा से मगध एक महीने की राह पर है। स्त्री होकर तुम किसके साथ जातीं ?

मृणा०—मुझसे मिलने के लिए हेमचन्द्र ने मथुरा में एक दुकान कर ली थी और रत्नदास वणिक् के नाम से परिचित थे। साल में एक बार वहाँ बनिज करने आते थे। जब वह मथुरा में नहीं रहते थे, तब दिग्विजय वहाँ दुकान में रहता था। दिग्विजय को उन्होंने आज्ञा दे रखी थी कि जब मैं जैसी आज्ञा दूँ, तब वैसा ही करे। अतएव मैं असहाय नहीं थी।

बात समाप्त होने पर गिरिजाया ने कहा—मालकिन, मुझसे एक बहुत भारी अपराध हो गया है। मुझे माफ़ करना होगा। मैं उसका उचित प्रायश्चित्त करने को तैयार हूँ।

मृणालिनी ने पूछा—ऐसा कौन-सा भारी अपराध तुमने किया है ?

गिरि०—दिग्विजय तुम्हारा हितकारी है, यह मैं नहीं जानती थी। मैं जानती थी कि अपदार्थ, निहायत निकम्मा है। इसी लिए मैंने आज सबेरे उसे अच्छी तरह झाड़ू से झाड़ दिया है। लेकिन अब समझती हूँ, यह ठीक नहीं किया।

मृणालिनी ने हँसकर कहा—तो तुम क्या प्रायश्चित्त करोगी ?

गिरि०—भिखारी की लड़की का क्या ब्याह होता है ?

मृणालिनी ने हँसकर कहा—करने से ज़रूर होता है।

गिरि०—तो मैं उस अपदार्थ से ब्याह कर लूँगी—और क्या करूँ ?

मृणालिनी ने फिर हँसकर कहा—तो मैं तेरी लगन चढ़ाऊँगी।

द्वादश परिच्छेद

परामर्श

हेमचन्द्र ने माधवाचार्य के रहने के स्थान पर जाकर देखा, आचार्य जप कर रहे हैं।

हेमचन्द्र ने प्रणाम करके कहा—हम लोगों का सब यत्न निष्फल हो गया। अब इस सेवक के लिए आप क्या आज्ञा करते हैं? यवन ने गौड़ पर अधिकार कर लिया है। जान पड़ता है, भारतभूमि के भाग्य में यवन की दासता ही विधाता ने लिखी है। नहीं तो बिना युद्ध के यवनों ने गौड़ पर कैसे अधिकार कर लिया? अगर अब मेरे प्राण देने से भी, एक दिन के लिए भी जन्मभूमि इस यवन के हाथ से छुटकारा पाकर स्वतंत्र हो जाय तो मैं अभी ये प्राण देने के लिये तैयार हूँ। इसी अभिप्राय से रात को युद्ध की आशा से मैं नगर में घूमा भी था; किन्तु युद्ध तो मैंने कहीं देखा नहीं, केवल यही देखा कि एक पक्ष आक्रमण कर रहा है और दूसरा पक्ष भाग रहा है।

माधवाचार्य ने कहा—वत्स! दुःखित न होओ। दैव का निर्देश कभी विफल नहीं होने का। मैंने जब गणना करके जाना है कि यवन परास्त होगा, तब निश्चय जानो, वह परास्त होगा। यवनों ने नवद्वीप पर अधिकार अवश्य कर लिया है, किन्तु नवद्वीप तो गौड़ नहीं है। प्रधान राजा सिंहासन छोड़कर भाग गये हैं; मगर गौड़ राज्य में अनेक कर देनेवाले सामन्त राज्य हैं। वे तो अभी तक जीते नहीं गये हैं। कौन जाने, ये सब राजा एकत्र होकर मिलकर प्राणपण से युद्ध करके यवनों को परास्त कर दें?

हेमचन्द्र ने कहा—इसकी बहुत कम संभावना है।

माधवाचार्य ने कहा—ज्योतिष की गणना कभी मिथ्या नहीं हो सकती। वह अवश्य सफल होगी। मगर हाँ, मेरी एक गलती या भ्रम होना संभव है। विचार से यह निकला है कि पूर्व-देश में यवन परास्त होंगे। इससे मैंने नवद्वीप

में ही यवन के जीते जाने की प्रत्याशा की थी। किन्तु गौड़ राज्य तो यथार्थ पूर्व नहीं है—कामरूप ही पूर्व है—जान पड़ता है, वहीं हमारी आशा सफल होगी।

हेमचन्द्र—किन्तु इस समय तो यवनों के कामरूप देश पर चढ़ाई करने की कोई संभावना मैं नहीं देखता।

माधवाचार्य—ये यवन क्षणभर भी स्थिर रहनेवाले नहीं हैं। गौड़ में अच्छी तरह पैर जमा लेते ही ये कामरूप पर आक्रमण कर देंगे।

हेम०—यह भी मैंने मान लिया; और ये कामरूप पर आक्रमण करते ही परास्त होंगे—इस पर भी विश्वास कर लिया; किन्तु तब मेरे पैतृक राज्य के उद्धार का क्या उपाय होगा?

माधवा०—ये यवन अभी तक बार-बार विजय प्राप्त करते आ रहे हैं और इसी कारण राजा लोगों की यह धारणा जड़ पकड़ गई है कि ये अजेय हैं—जीते नहीं जा सकते। कोई इनका विरोधी होना नहीं चाहता। ये एक बार जहाँ पराजित हुए, फिर इनकी यह महिमा नहीं रहेगी। जब भारतवर्ष के सभी आर्यवंशी राजा शस्त्र उठाकर मुक़ाबिले को तैयार हो जायँगे, तब यवनों के पैर कब तक टिके रहेंगे?

हेमचन्द्र—गुरुदेव! आप केवल आशा का सहारा ले रहे हैं। मैं भी वही करता हूँ। अब मैं क्या करूँ, आज्ञा कीजिए।

माधवाचार्य—मैं भी यही सोच रहा था। अब इस समय तुमको इस नगर में नहीं रहना चाहिए। कारण, यवन लोग तुम्हें मार डालने का विचार कर चुके हैं—तुम्हारी खोज में होंगे। मेरी आज्ञा है कि तुम अभी, आज ही इस नगर को छोड़ जाओ।

हेम०—कहाँ जाऊँ?

माधवा०—मेरे साथ कामरूप चलो।

हेमचन्द्र ने सिर झुका लिया। अप्रतिभ होकर धीरे-धीरे बोले—मृणालिनी को कहाँ रख जाइएगा?

माधवाचार्य ने विस्मित होकर कहा—यह क्या ! मैं समझा था कि तुमने कल की बातचीत से मृणालिनी को अपने मन से दूर कर दिया था ?

हेमचन्द्र ने पहले ही की तरह धीरे से कहा—मृणालिनी को छोड़ नहीं सकता। वह मेरी विवाहिता पत्नी है।

माधवाचार्य चौंक पड़े। रुष्ट हुए। क्षोभ के साथ बोले—मैं तो इस विषय में कुछ नहीं जानता था।

तब हेमचन्द्र ने आद्योपान्त अपने विवाह का वृत्तान्त कह सुनाया। सुनकर माधवाचार्य कुछ देर चुप रहे। फिर बोले—जो स्त्री बुरे आचरणवाली है, वह तो शास्त्र के अनुसार त्याग करने के योग्य है। मृणालिनी के चरित्र के संबंध में संशय की बात मैं कल तुम्हारे आगे प्रकट कर चुका।

तब हेमचन्द्र ने व्योमकेश का सारा हाल माधवाचार्य से कहा। सुनकर माधवाचार्य ने कहा—बेटा, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। तुम्हें परम प्रिय और ऐसी गुणवती भार्या को तुमसे अलग करके मैंने अनजाने बहुत क्लेश पहुँचाया है। अब आशीर्वाद करता हूँ कि तुम दोनो दीर्घजीवी होकर बहुत दिनो तक एकसाथ धर्म का आचरण करो। अगर तुम इस समय स्त्री को पा गये हो—तुम्हारा संयोग भगवान् ने करा दिया है तो अब मैं तुमसे अपने साथ कामरूप चलने का अनुरोध नहीं करूँगा। मैं आगे जाता हूँ। जब उपयुक्त समय समझेंगे, तब कामरूप के राजा तुम्हारे पास अपना दूत भेजेंगे। अब इस समय तुम अपनी पत्नी को लेकर मथुरा में जाकर रहो। अथवा अपनी इच्छा के अनुसार अन्य किसी स्थान में जाकर निवास करना।

इस तरह बातचीत होने के बाद हेमचन्द्र माधवाचार्य से विदा हुए। माधवाचार्य ने भी हेमचन्द्र को गले से लगाकर, आशीर्वाद देकर, आँखों में आँसू भरकर उनको विदा किया।

——:※:——

त्रयोदश परिच्छेद

महम्मदअली का प्रायश्चित्त

जिस रात को राजधानी यवन-सेना के आक्रमण से पीड़ित हो रही थी, उसी रात को पशुपति अकेले यवन की क़ैद में पड़े थे। रात समाप्त होते-होते यवनों की उथल-पुथल समाप्त हो गई। तब महम्मदअली पशुपति से मिलनें वहाँ गया जहाँ वह क़ैद थे।

पशुपति ने उसे देखकर कहा—यवन! अब मीठे-मीठे प्रिय संबोधन की आवश्यकता नहीं है। एक बार तुम्हारी ही मीठी-मीठी बातों पर विश्वास करके मैं इस दशा को पहुँचा हूँ। विधर्मी यवन को विश्वास करने का जो फल होना चाहिए, वह मुझे मिल गया। अब मैंने मौत को ही अच्छा समझकर और सब आशा-आकांक्षा छोड़ दी है। अब मैं तुम लोगों का कोई प्रिय संभाषण नहीं सुनूँगा।

महम्मदअली ने कहा—मैं अपने मालिक के हुक्म की तामील करता हूँ, और मालिक का हुक्म बजाने के लिए आया हूँ। आपको मुसलमानी यानी तुर्की पहनावा पहनना होगा।

पशुपति ने कहा—इस विषय में आप अपने चित्त को स्थिर कीजिए। मैंने अब मरने का ही निश्चय कर लिया है। मैं प्राण-त्याग करने के लिए प्रस्तुत हूँ; लेकिन यवनधर्म नहीं स्वीकार करूँगा।

म० अली—मैं आपसे इस वक़्त दीनमहम्मदी क़बूल करने को नहीं कहता। सिर्फ़ बादशाह के प्रतिनिधि को सन्तुष्ट करने के लिए तुर्की पोशाक पहनने को कह रहा हूँ।

पशुपति—ब्राह्मण होकर किसलिए म्लेच्छ का वेश धारण करूँ?

म० अली—देखिए, आप खुशी से न पहनना चाहेंगे तो हम ज़बर्दस्ती

पहनावेंगे। राज़ी न होने से सिर्फ़ बेइज्जती ही हासिल होगी। समझ लीजिए।

पशुपति ने कुछ उत्तर नहीं दिया। महम्मदअली ने अपने हाथ से उनको तुर्की वेष पहनाया। फिर कहा—मेरे साथ आइए।

पशुपति ने पूछा—कहाँ चलूँ?

महम्मदअली ने कहा—आप बंदी हैं—पूछने की क्या जरूरत है?

महम्मदअली उन्हें सिंहद्वार पर ले चला। जो आदमी पशुपति की रक्षा पर—पहरे पर—नियुक्त था, वह भी साथ-साथ चला।

फाटक पर पहरेदारों के प्रश्न करने पर महम्मदअली ने उन्हें अपना परिचय दिया। एक इशारा किया, पहरेदारों ने रास्ता छोड़ दिया। राजमहल के सिंहद्वार से निकलकर तीनों जने (पशुपति, महम्मदअली और पहरेदार) कुछ दूर सड़क पर आगे बढ़े। उस समय यवन-सेना नगर को लूटपाट कर विश्राम कर रही थी। अतएव राजमार्ग पर अब कोई उपद्रव नहीं था।

महम्मदअली ने पशुपति से कहा—नायब साहब! आपने मुझे बेकार ही बुरा-भला कहा। मेरा इसमें जरा भी कुसूर नहीं है। मुझे क़तई यह बख्तियार खिलजी का इरादा नहीं मालूम था। अगर मालूम होता तो मैं हर्गिज उस दगाबाज़ का दूत बनकर आपके पास न जाता। खैर जो हुआ सो हुआ, आप मेरी बात पर यक़ीन करके ऐसी दुर्दशा को पहुँचे हैं, इसलिए मैं इसका भरसक प्रायश्चित्त करूँगा। गंगा के किनारे नाव तैयार है, आप उस पर बैठकर जहाँ खुशी हो, चले जाइए। मैं अब यहाँ से विदा होता हूँ।

पशुपति को बड़ा विस्मय हुआ। वह अवाक् होकर महम्मदअली का मुह ताकने लगे।

महम्मदअली फिर कहने लगा—आप इसी रात को यह शहर छोड़ जाइए। नहीं तो कल सवेरे—सवेरा होने ही वाला है—खिलजी से आप

का सामना होने से बहुत बुरा होगा । मैंने खिलजी के हुक्म के खिलाफ यह काम किया है, इसका गवाह यह पहरे का सिपाही है । इसलिए अपनी रक्षा के लिए मैं इसे भी यहाँ से दूसरे देश को भेज रहा हूँ । इसे भी आप अपने साथ नाव पर ले जाइएगा ।

इतना कहकर महम्मदअली चल दिया । पशुपति कुछ देर तक विस्मय से वहीं खड़े रहे और फिर गंगातट की ओर चल दिये ।

चतुर्दश परिच्छेद

धातु की मूर्ति विसर्जन

महम्मदअली से विदा होकर सड़क पर पशुपति धीरे-धीरे चलने लगे । धीरे-धीरे चले—यवन की कैद से छुटकारा पाकर भी, तेजी के साथ दौड़ने या भागने को उनका भी जी नहीं चाहा । राह में, सड़क पर, उन्होंने जो कुछ देखा, उससे इतना पछतावा और अपने ऊपर घृणा उनके मन में उत्पन्न हुई कि वह मन ही मन जैसे मर गये ! उनके पैरों में पग-पग पर नागरिकों की लाशें उलझने और टकराने लगीं । हर बार पृथ्वी पर पैर रखते ही रक्त के कीचड़ में सन जाते थे । सड़क के आस-पास घरों की पाँतों में कोई मनुष्य जीवित न रह गया था, सब सूने हो गये थे । सब जला डाले गये थे । कहीं-कहीं किसी-किसी घर की लड़कियाँ जले हुए अंगारों के रूप में अभी दहक रही थीं । घरों के भीतर दरवाजे टूटे पड़े थे; झरोखे, खिड़कियाँ, कोठे सब तोड़-फोड़ डाले गये थे—उनमें लाशें ढेर थीं, अभी तक कोई-कोई अभागा मरण-यंत्रणा से अमानुषिक कातर स्वर में कराह रहा था । कोई असह्य पीड़ा और कष्ट से चिल्ला रहा था । इस सब अनर्थ की जड़ तो वही हैं । दारुण लोभ के वशवर्ती होकर उन्होंने राजधानी को श्मशान-भूमि बनवा डाला है । पशुपति ने मन ही मन यह स्वीकार किया कि वह बेशक प्राणदण्ड के

ही योग्य हैं। वह क्यों महम्मदअली के सिर कलंक लादकर कारागार से भाग आये ? यवन उन्हें पकड़ ले, मनमाना दण्ड दे, यही ठीक है। यही सोचकर उन्होंने लौट जाने का विचार किया।

उन्होंने मन में इष्टदेवी अष्टभुजा का स्मरण किया; किन्तु उनसे काहे की कामना करें ? कामना करने का विषय तो अब कुछ भी नहीं रह गया।

आकाश की ओर देखा। आकाश की वह चन्द्रसहित नक्षत्र-ग्रह-मण्डली की हँसती हुई पवित्र शोभा उनके लिए असह्य हो उठी—उनसे देखी नहीं गई। जैसे बहुत तीव्र ज्योति की चमक नेत्रों पर पड़ने से आदमी चौंधियाकर नेत्र बन्द कर लेता है, वैसे ही पशुपति ने आँखें मूँद लीं। सहसा एक अस्वाभाविक भय उदय होकर उनके हृदय पर छा गया। अकारण भय से वह आगे पैर नहीं बढ़ा सके। सहसा उनका शरीर निर्बल हो गया। विश्राम करने के लिए रात में एक जगह बैठने लगे तो देखा, एक मुर्दे के ऊपर बैठने जा रहे थे। शव से निकला हुआ रक्त उनके कपड़े में और अंग में लग गया था। उनके रोएँ खड़े हो गये और वह उठ खड़े हुए। फिर वहाँ खड़े नहीं हुए, तेज़ चाल से चल खड़े हुए।

सहसा उन्हें और एक बात याद आ गई।—उनका अपना घर ? उसकी क्या दशा हुई होगी ? वह क्या यवनों के हाथों नष्ट होने से बच गया होगा ? और उस घर के भीतर जिस कुसुम-सी सुकुमारी प्राणप्रिया को वह छिपा आये थे, उसकी क्या दशा हुई ? मनोरमा की क्या दशा हुई ? उनकी प्राणों से प्यारी मनोरमा ने उन्हें बार-बार पाप की राह से लौटाना चाहा था पर उन्होंने नहीं माना। शायद वह मनोरमा भी उनके पाप-समुद्र की लहरों में डूब गई ? इस यवन-सेना के प्रवाह में वह कुसुमकली न जाने कहाँ बह गई होगी ?

पशुपति उन्मत्त की तरह सब कुछ भूलकर अपने घर की ओर दौड़ चले। अपने भवन के सामने जब वह उपस्थित हुए, तब उन्होंने देखा कि

जो सोचा था, वही हुआ है। जलते हुए पर्वत की तरह ऊँची चोटी वाली हवेली होली की तरह नीचे से ऊपर तक अग्निमय होकर जल रही है।

देखते ही अभागे पशुपति को विश्वास हो गया कि यवनों ने उनके घर में रहनेवाले और लोगों के साथ ही मनोरमा का वध करके घर में आग लगा दी है। उन्हें यह क्या मालूम कि मनोरमा पहले ही से निकलकर भाग गई है।

आस पास कोई नहीं था, जो उन्हें यह खबर देता। अपने विकल चित्त ने जो सिद्धान्त किया, उसी को उन्होंने मान लिया। हलाहल का घड़ा भर गया—हृदयतंत्री का बचा हुआ तार भी टूट गया। वह कुछ देर तक आँखें फाड़े जलती हुई अपनी हवेली की ओर देखते रहे, फिर क्षणभर मरण के लिए उन्मुख पतिंगे की तरह विकल शरीर से तड़ककर बड़े वेग से उस आग की राशि में फाँद पड़े। साथ का वह पहरेदार यवन सैनिक भौचक्का-सा खड़ा देखता रह गया।

बड़े वेग से पशुपति उस जलते हुए फाटक की राह से अपने भवन के भीतर धँस गये। पैर जल गये, अंग झुलस गये; किन्तु पशुपति पीछे नहीं लौटे। अग्नि के उस जंगल को नाँघते-फाँदते वह अपने शयन-कक्ष में जा पहुँचे। वहाँ भी कोई नहीं देख पड़ा। अधजले शरीर से एक कोठे से दूसरे कोठे में दौड़ते हुए फिरने लगे। उनके हृदय के भीतर जो प्रचंड आग जल रही थी, उसके आगे यह बाहर की आग कुछ नहीं थी—इसके दाह की यंत्रणा का वह अनुभव ही नहीं कर पा रहे थे।

क्षण-क्षण में घर की नयी-नयी चीजों और नये-नये स्थानों पर अग्नि-देव का आक्रमण बढ़ता जा रहा था। जो स्थान आग की लपट में आता जाता था उससे हाथों ऊँची आग की लपटें निकलकर आकाश में छा जाती थीं। अग्नि का भयंकर गर्जन कान फाड़े डाल रहा था। क्षण-क्षण में जले हुए घर के हिस्से सब वज्रपात के-से शब्द के साथ पृथ्वी पर गिर रहे

थे। धुआँ और धूल-मिट्टी के साथ लाखों आग की चिनगारियाँ आकाश में उड़कर अदृश्य हो जाती थीं।

दावानल से घिरे हुए जंगली हाथी की तरह पशुपति उस आग के भीतर दास-दासी, स्वजन और मनोरमा को खोजते हुए घूमने लगे। पर किसी का कहीं कोई चिन्ह नहीं मिला। अन्त में वह हताश हो गये।

तब देवी के मंदिर पर उनकी दृष्टि पड़ी। देखा, देवी अष्टभुजा का मंदिर भी आग की लपटों में जल रहा है। पशुपति पतंग की तरह उसके भीतर घुस गये। देखा, अग्निमण्डल के बीच बिना जली हुई स्वर्ण-प्रतिमा विराज रही है। पशुपति ने उन्मत्त की तरह कहा—मा? जगदम्बे? अब मैं तुम को जगदम्बा नहीं कहूँगा। अब तुम्हारी पूजा नहीं करूँगा। तुम्हें प्रणाम भी नहीं करूँगा। बचपन से मैं मन-वाणी-काया से तुम्हारी सेवा करता आ रहा हूँ—इन चरणों के ध्यान को ही इस जन्म का—इस जीवन का सब कुछ बना लिया था। अब इस समय मा! मैंने एक दिन के पाप से सब कुछ खो दिया। तो फिर किस लिए मैंने तुम्हारी पूजा की थी? तुमने क्यों नहीं यह मेरी पाप-बुद्धि दूर की?

मंदिर को जलाती हुई आग अधिकतर प्रबल वेग से प्रचण्ड होकर गर्जन कर उठी। तथापि पशुपति प्रतिमा को संबोधन करके कहने लगे—यह देखो, धातु की मूर्ति!—तुम केवल धातु की मूर्तिमात्र हो, देवी नहीं हो—यह देखो, आग गरज रही है। जिस राह से मेरी प्राणाधिक प्रिय मनोरमा गई है, उसी राह में यह आग तुमको भी भेज देगी। किन्तु मैं अग्नि को यह कीर्ति छोड़ जाने न दूँगा। मैंने तुम्हारी स्थापना की थी; मैं ही तुम्हारा विसर्जन कर जाऊँगा। चलो इष्टदेवी! तुमको गंगा के जल में विसर्जन कर आऊँ?

इतना कहकर पशुपति ने प्रतिमा को उठाने के लिए दोनो हाथों से उसे पकड़ा। इसी समय आग फिर गरज उठी। साथ ही पहाड़ के फटने का-सा घोर शब्द हुआ। जलता हुआ मंदिर आकाश की ओर धूल-धुआँ-भस्म

और चिनगारियाँ उड़ाता हुआ चूर्ण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसी के भीतर प्रतिमा-सहित पशुपति की जीवित समाधि हो गई।

—:※:—

पंचदश परिच्छेद

अन्तिम काल में

पशुपति आप अष्टभुजा देवी की पूजा अवश्य करते थे, लेकिन तो भी उनकी नित्य सेवा के लिए दुर्गादास नाम के एक ब्राह्मण पुजारी नियुक्त थे। नगर-विप्लव के दूसरे दिन दुर्गादास ने सुना कि पशुपति का भवन भस्म होकर गिर गया है। तब उस ब्राह्मण ने अष्टभुजा की मूर्ति को राख के भीतर से निकालकर अपने घर में स्थापित करने का विचार किया। यवन लोग नगर को लूटकर जब अघा गये, तब बख्तियार खिलजी ने अनर्थक नगरवासियों को सताने का निषेध कर दिया था। अतएव अब साहस करके वहाँ के बचे-खुचे नागरिक बंगाली सड़क पर बाहर निकलने लगे थे। यह देखकर दुर्गादास तीसरे पहर अष्टभुजा की मूर्ति को निकालने के लिए पशुपति के घर की ओर चले।

पशुपति के घर में जाकर वह उस जगह पहुँचे जहाँ पर देवी का मन्दिर था। देखा, ईंटों का ढेर हटाये बिना देवी की प्रतिमा न मिल सकती है और न निकाली जा सकती है। तब वह अपने पुत्र को भी घर जाकर लिवा लाये। ईंटें सब आग की तेजी से गलकर एक दूसरी से सट गई थीं और अभी तक इतनी गरम थीं कि छुई नहीं जा सकती थीं। पिता और पुत्र दोनो ने एक पोखर से पानी लाकर उन ईंटों को बुझाकर ठंडा किया। फिर बड़े कष्ट से ईंटों का ढेर हटाकर साफ किया तो भीतर अष्टभुजा की मूर्ति के दर्शन हुए। किन्तु प्रतिमा के पैरों के पास यह क्या है? पिता और पुत्र ने भीत होकर देखा, वह पशुपति का शरीर है। दोनो ने उस शव को उठाकर देखा, वह पशुपति का शव था।

विस्मयसूचक बातचीत के बाद दुर्गादास ने अपने पुत्र से कहा—चाहे जिस प्रकार हमारे प्रभु की यह दशा हुई हो, हमें ब्राह्मण का और प्रतिपालित का कर्त्तव्य अवश्य करना होगा। गंगा के किनारे यह शव ले चलकर चलो हम अपने स्वामी का दाहकर्म करें।

इतना कहकर दुर्गादास अपने पुत्र की सहायता से पशुपति के शव को गंगातट पर ले गये। वहाँ पुत्र को शव की रक्षा के लिए छोड़कर वह दाहकर्म के लिए लकड़ी, घृत, चंदन, वस्त्र आदि सामग्री एकत्र करने के लिए गये। यथासमय सब सामग्री लेकर वह गंगातट को लौट आये।

फिर दुर्गादास ने पुत्र की सहायता से शास्त्र की विधि के अनुसार पहले के पिंडदान आदि कृत्य करके चिता की रचना की। उस पर पशुपति के शव को रखकर अग्निदान के लिए प्रस्तुत हुए।

किन्तु अकस्मात् श्मशान-भूमि में यह किसका आविर्भाव हुआ? दोनों ब्राह्मण विस्मित नेत्रों से देखने लगे—एक मैले वस्त्र पहने, रूखे केश बिखेरे, राख और धूल में लिपटी होने के कारण विवर्ण हो रही उन्मादिनी श्मशान-भूमि के घाट में उतर रही है। वह रमणी धीरे-धीरे दोनों ब्राह्मणों के पास आ पहुँची।

दुर्गादास ने डरते हुए पूछा—आप कौन हैं?

रमणी ने कहा—तुम लोग यह किसका दाह कर रहे हो?

दुर्गादास ने कहा—मृत धर्माधिकारी पशुपति शर्मा का।

रमणी ने पूछा—पशुपति की मृत्यु किस प्रकार हुई?

दुर्गादास ने कहा—सवेरे नगर में मैंने यह जनरव (अफ़वाह) सुना था कि उन्हें यवन ने कैद कर लिया था। रात को वह कोई मौक़ा पाकर वहाँ से निकल भागे। आज उनकी हवेली को जला हुआ देखकर मैं उसके भीतर से अष्टभुजा देवी की प्रतिमा निकाल लाने को गया था। वहाँ जाकर मैंने स्वामी का शव पाया।

रमणी ने कोई बात नहीं कही। गंगातट पर बालू के ऊपर बैठ गई। बहुत देर चुप रहने के बाद उसने पूछा—तुम लोग कौन हो?

दुर्गादास ने कहा—हम ब्राह्मण हैं। धर्माधिकारी के अन्न से प्रतिपालित हुए हैं। आप कौन हैं?

रमणी ने कहा—मैं इनकी पत्नी हूँ।

दुर्गादास ने कहा—उनकी पत्नी का तो बहुत दिनों से पता नहीं है। आप कैसे उनकी स्त्री हैं!

युवती ने कहा—मैं वही उनकी पत्नी हूँ, जिसका बहुत दिनों से पता नहीं था। सती होने के भय से मेरे पिता ने मुझे अब तक छिपा रखा था। आज समय पूरा होने पर मैं विधाता का विधान पूर्ण करने के लिए यहाँ आई हूँ।

सुनकर पिता और पुत्र, दोनों सिहर उठे। उनको चुप देखकर विधवा मनोरमा कहने लगी—अब मैं स्त्री-जाति का कर्त्तव्य-कार्य पूरा करूँगी। तुम लोग उसकी तैयारी करो।

दुर्गादास ने रमणी का मतलब समझ लिया। पुत्र के मुख की ओर देखकर बोले—क्या कहते हो?

पुत्र ने कुछ उत्तर नहीं दिया। तब दुर्गादास ने मनोरमा से कहा—बेटी, तुम अभी बालिका हो। इस कठिन कार्य के लिए क्यों प्रस्तुत होती हो?

तरुणी ने भौंहें टेढ़ी करके कहा—ब्राह्मण होकर अधर्म में प्रवृत्ति क्यों देते हो? मैं जो कहती हूँ, उसका उद्योग करो।

तब ब्राह्मण सती होने के उपयुक्त सामग्री लाने के लिए फिर नगर की ओर गये। जाते समय विधवा ने दुर्गादास से कहा—तुम नगर में जा रहे हो। नगर के किनारे राजा के उपवन की बारादरी में हेमचन्द्र नाम के एक विदेशी राजपुत्र रहते हैं। उनसे कहना कि मनोरमा गंगा के किनारे चिता पर चढ़ने जा रही है। वह आकर एक बार मुझसे मिल जायँ। उनसे मेरी यही एकमात्र भीख है। अवश्य आवें।

हेमचन्द्र ने जब ब्राह्मण के मुख से सुना कि मनोरमा पशुपति की पत्नी के परिचय से उनके शव के साथ सती होने जा रही है, तब उनकी कुछ

समझ में न आया। वह दुर्गादास के साथ गंगा के किनारे आकर उपस्थित हुए। वहाँ मनोरमा की अतिमलिन, उन्मादिनी मूर्ति और उसकी स्थिर गंभीर एवं इस समय भी अनिन्द्य सुन्दर मुख-कान्ति देखकर उनकी आँखों से आप ही आप आँसू बहने लगे। उन्होंने कहा—मनोरमा! बहन! यह क्या है?

तब मनोरमा ने चाँदनी से जगमगाते हुए सरोवर के तुल्य स्थिर मूर्ति से मृदु गंभीर स्वर में कहा—भाई, जिसके लिए मेरा यह जीवन था उसकी आज अन्तिम दशा यह है। आज मैं अपने स्वामी के साथ जाऊँगी।

मनोरमा ने इसके बाद संक्षेप में, दूसरा कोई सुन न पावे ऐसे धीमे स्वर में, अपना पहले का सब वृत्तान्त हेमचन्द्र को सुनाकर, कहा—मेरे स्वामी अपरिमित धन जमा करके रख गये हैं। इस समय मैं उस धन की अधिकारिणी हूँ। वह धन मैं तुमको देती हूँ। तुम ग्रहण करना। नहीं तो पापिष्ठ यवन उसका भोग करेंगे। उसका थोड़ा-सा अंश निकालकर जनार्दन शर्मा को काशी में रख देना। जनार्दन को अधिक धन न देना। नहीं तो यवन उनसे छीन लेंगे। मेरे दाह के बाद तुम मेरे स्वामी के घर में जाकर धन की खोज करना। मैं जो जगह बताये देती हूँ, उस जगह खोदने से ही तुम्हें वह धन मिल जायगा। मेरे सिवा उस स्थान को और कोई नहीं जानता।

इतना कहकर मनोरमा ने वह स्थान हेमचन्द्र को बता दिया। फिर उसने हेमचन्द्र से बिदा माँगी। जनार्दन और उनकी पत्नी के लिए और कितनी ही स्नेहसूचक बातें हेमचन्द्र के द्वारा कहला भेजीं।

इसके बाद ब्राह्मणों ने मनोरमा को शास्त्रोक्त विधि से इस भीषण व्रत का संकल्प कराया। तदनन्तर शास्त्रोक्त विधिविधान सम्पन्न होने पर मनोरमा ने ब्राह्मणों का लाया कोरा वस्त्र धारण किया। नया कपड़ा पहनकर, कंठ में पुष्पमाल्य धारणकर मनोरमा ने पशुपति की प्रज्वलित चिता की प्रदक्षिणा की और उस पर पशुपति का शव गोद में लेकर बैठ गई। हँसते हुए चेहरे से उस प्रज्वलित अग्निराशि के ऊपर बैठी हुई मनोरमा देवी धूप से मुरझी हुई कुसुमकलिका के समान जलकर स्वर्ग सिधार गई।

परिशिष्ट

हेमचन्द्र ने मनोरमा के दिये हुए धन को निकालकर उसका कुछ अंश जनार्दन शर्मा को देकर उन्हें काशी भेज दिया। बाक़ी धन लेना उचित है या नहीं, यह उन्होंने माधवाचार्य से पूछा। माधवाचार्य ने कहा—इस धन के बल से पशुपति का सर्वनाश करनेवाले बख्तियार खिलजी से उसके कर्म का बदला लेना कर्त्तव्य है और इसी प्रयोजन से इस धन को लेना भी उचित है। दक्षिण सागर के उपकूल में अनेक प्रदेश उजाड़ निर्जन पड़े हैं। मेरी सलाह यह है कि तुम इस धन के द्वारा एक नये राज्य की स्थापना करो और वहाँ यवनों का दमन करने योग्य सेना तैयार करो। उस सेना की सहायता से पशुपति के शत्रुओं का विनाश करना।

यह परामर्श करके माधवाचार्य ने उसी रात को हेमचन्द्र को नवद्वीप से दक्षिण की ओर भेज दिया। पशुपति के धन की राशि वह छिपाकर अपने साथ लेते गये। मृणालिनी, गिरिजाया और दिग्विजय उनके साथ गये। माधवाचार्य भी हेमचन्द्र को नवीन राज्य में स्थापित करने के लिए उनके साथ गये। वहाँ राज्य क़ायम करने में कुछ भी कठिनाई नहीं हुई; क्योंकि यवनों के धर्मविद्वेष से पीड़ित और उनसे भयभीत होकर अनेक लोग यवनों के अधिकृत राज्य से हेमचन्द्र के नवीन स्थापित राज्य में जाकर बसने लगे।

माधवाचार्य के परामर्श से भी अनेक प्रधान धनी व्यक्ति और सेठ वहाँ जाकर आश्रय लेने लगे। इस तरह बहुत शीघ्र वह छोटा-सा राज्य भरापूरा हो उठा। शीघ्र ही रमणीय राजपुरी बन गई। मृणालिनी ने राजरानी होकर उस पुरी की शोभा सौ गुनी कर दी।

गिरिजाया के साथ दिग्विजय का ब्याह हो गया। गिरिजाया मृणालिनी की सेवा में नियुक्त हुई। दिग्विजय पहले ही की तरह हेमचन्द्र के काम करने लगा। सुन पड़ता है, ब्याह होने के बाद से ऐसा कोई दिन न जाता था, जिस दिन गिरिजाया अपने हाथ से एक आध बार झाड़ू मारकर दिग्विजय के शरीर को पवित्र न कर देती हो। इससे दिग्विजय बहुत ही दुःखित हो, यह बात न थी। बल्कि एक दिन किसी दैवी कारण से—दैवसंयोग से—झाड़ू

मारना भूल गई थी, इससे दिग्विजय ने उदासमुख होकर गिरिजाया के पास जाकर पूछा था—गिरि, आज तुम मेरे ऊपर नाराज हो क्या? वास्तव में इन दोनों का जीवन अन्त तक बड़े सुख से बीता।

हेमचन्द्र को नये राज्य में स्थापित करके माधवाचार्य कामरूप देश को चले गये। उस समय हेमचन्द्र दक्षिण में यवनों की प्रतिकूलता करने लगे। बख्तियार खिलजी हारकर कामरूप से भगा दिया गया। लौटते समय अपमान और कष्ट से उसका प्राणान्त हो गया। किन्तु उन सब घटनाओं का वर्णन करना इस उपन्यास का उद्देश्य नहीं है।

रत्नमयी एक धनी माँझी से ब्याह करके हेमचन्द्र के नवीन राज्य में जाकर बस गई। वहाँ मृणालिनी के अनुग्रह से उसके स्वामी की विशेष उन्नति और प्रतिष्ठा हुई। गिरिजाया और रत्नमयी सदैव सहेली रहीं।

मृणालिनी ने माधवाचार्य के द्वारा हृषीकेश से अनुरोध कराकर उनकी कन्या मणिमालिनी को अपनी राजधानी में बुला लिया। मणिमालिनी राजपुरी के भीतर मृणालिनी की सखी के रूप में रहने लगी। उसके स्वामी को राजभवन के पुरोहित का पद प्राप्त हुआ।

शान्तशील ने जब देखा कि अब हिन्दुओं के राज्य पाने की संभावना नहीं है, तब वह अपनी चतुरता और कार्यदक्षता दिखाकर यवन का प्रियपात्र होने की चेष्टा करने लगा। हिन्दुओं के ऊपर अत्याचार और उनसे विश्वासघात करके शीघ्र ही उसने अपनी मनोकामना पूरी कर ली। वह अपने चाहे राजकाज में निश्चिन्त हो गया।